गदक

दक न्यायतीर्थ

प्रकाशकः—हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम.

मुद्रक

कृष्णकान्त जैन.

व्याख्यान सार संग्रह पुस्तकमाला का २७ वां पुष्प

श्री मज्जवाहिराचार्य

के

❋ राजकोट-चातुर्मास ❋

के

कतिपय व्याख्यान

सम्पादक

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम की तरफ से

पं० पूर्णचन्द्रजी दक न्यायतीर्थ

प्रकाशक

श्री साधुमार्गी जैन,

पूज्य श्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय का

हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम.

मुद्रकः—

कृष्णाकांत जैन

लोकराज प्रिंटिंग प्रेस, लि० रतलाम (म. भा.)

प्रथमावृत्ति १००० | मूल्य एक रुपया | वि. संवत् २००७

पुस्तकों के प्राप्ती स्थान

१–श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम (मध्य-भारत)

२– ,, जैन जवाहर मित्र मण्डल ब्यावर (राजस्थान)

३–श्री जैन जवाहर विद्यापीठ भीनासर (बीकानेर)

४– ,, ,, सेठीया जैन पारमार्थिक संस्था बीकानेर (मारवा

५– ,, सोहनलाल जैन रजोहरण पात्र भण्डार,

अम्बाला (पञ्जा

६– ,, ,, नवयुवक मण्डल कान्धला (मुजफ्फरनगर)

७– ,, ,, जवाहर मण्डल रायपुर (सी० पी०)

श्री, ओसारीपुरा, रतलाम. (म. भा.)

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम.

का

परिचय

॥. एस.

पदाधिकारी

प्रेसीडेन्ट—श्रीमान् सेठ हीरालालजी नांदेचा.
वाइस प्रे.— „ वालचन्दजी श्रीश्रीमाल.
खजाञ्ची — „ सेठ वदीचन्दजी वर्धमानजी पीतलिया.
सेक्रेटरी — „ सुजानमल गादियां.

चालू प्रवृत्तियां

(१) श्री धार्मिक परीक्षा-बोर्ड का संचालन
(२) शिक्षण संस्थाओं का संचालन
(३) निवेदन पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन
(४) साहित्य का सम्पादन एवं प्रकाशन
(५) न्यायपूर्ण, सरल, सत्य सिद्धान्तों का प्रचार

सदस्य

रुपे ५०१) से अधिक एक मुश्त देनेवाले वंशपरंपरा के सदस्य
„ १०१) से अधिक पांचसौ रु. तक देनेवाले आजीवन सदस्य
„ २) वार्षिक शुल्क देनेवाले वार्षिक सदस्य माने जाते हैं।

प्रकरण सूचि

प्रकरण	नाम विषय	पृष्ठ
१.	समझ की भ्रान्ति	१
२.	ब्रह्मचर्य की महिमा	२६
३.	इच्छा आकाश के समान अनन्त है	५३
४.	आदर्श नगर सेठ	७६
५.	परोपकार ही जीवन का सार है	१००
६.	सूक्ष्म संस्कारों की करामात	१२७
७.	रोग आत्मा का परम मित्र है	१५३
८.	प्रकृति की अपेक्षा आत्मा में अनन्त गुणी शक्ति है	१८१
९.	संतान पर माता पिता का ऋण	२०६
१०.	आदर्श भ्रातृ प्रेम	२२७
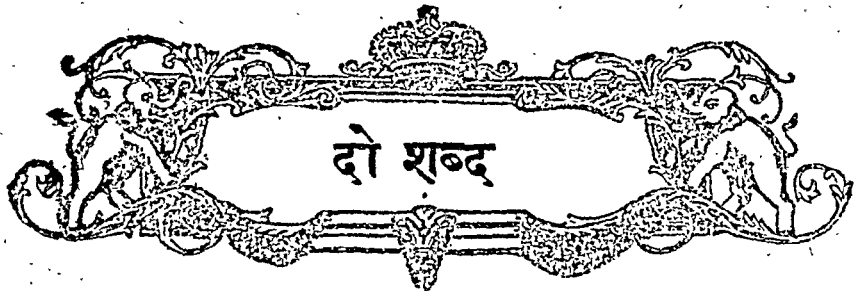
दो शब्द

महापुरुष उन्हें ही माने जाते हैं, जो अपना आत्म कल्याण करने के साथ ही साथ संसार का भी कल्याण करे अर्थात् जनता को सन्मार्ग दिखाकर उसे मोक्ष के अभिमुख करे।

पूर्वकाल में जितने भी तीर्थङ्कर परमात्मा हुए हैं वे सभी केवलज्ञान केवल दर्शक उत्पन्न होने के बाद प्रवचन करते हैं जिनका श्रवण मनन करके अनेक भव्यात्मा संसार को पार करके सिद्ध बने व बनेगे पश्चात् वे ही प्रवचन सिद्धान्त बन कर उनकी शिष्य परम्परा द्वारा जनता का कल्याण हो रहा है।

श्री मज्जैनाचार्य स्वर्गीय पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज साहब वर्तमान समय के अद्वितीय प्रतिभाशाली प्रवचनकार हुए हैं उनके प्रवचन समयानुकूल होते हुए भी सूत्रों से अविरुद्ध तथा जनहितकारी हैं, और उन्हें जनता बड़ी उत्सुकता से अपना रही है, यह देख हमारा भी उत्साह संग्रहित प्रवचनों को साहित्य रूप में सम्पादन कराकर प्रकाशित करने के लिए बढ़ा है। इसके फलस्वरूप राजकोट चातुर्मास के व्याख्यान कुछ तो श्री जवाहिर किरणावली के सातवें भाग में प्रकाशित किये हैं और दस व्याख्यान इस भाग में प्रकाशित किये जा रहे हैं, शेष व्याख्यान आगे भी देने के लिये प्रयत्न जारी है।

भारत में बहुत सी जगह जहां मुनिराज व सतियों का विचरण या चातुर्मास न हो वहां इन व्याख्यानों के द्वारा जनता अपनी धर्म भावना पुष्ट करती है इसलिये इन व्याख्यानों का प्रचार अधिक हो तथा साधारण जनता भी इसका उपयोग कर सके इसलिये इसका मूल्य लागत से कम रखा है। ढाई सौ पृष्ठ की इस पुस्तक का मूल्य केवल १) रु० ही रखा है, शेष खर्च श्री जवाहिर स्मारक फंड में से लेकर पूर्ति की जावेगी।

अन्त में यह प्रकट कर देना प्रासंगिक ही होगा कि—

पूज्य श्री के प्रवचन साधु भाषा में ही होते थे, संग्राहक या सम्पादकों से कोई त्रुटि हो गई हो तो वह दोष संग्राहक या सम्पादक का है। कोई वाक्य जैनागम शैली से विपरीत निगाह में आवे तो हमें सूचित करने से भविष्य से साभार संशोधन कर दिया जावेगा। इत्यलम्।

रतलाम
मगसर शुक्ला पूर्णिमा
सं० २००७

भवदीय—
बालचंद श्री श्रीमाल — हीरालाल नांदेचा
वाइस प्रेसीडेन्ट — प्रेसीडेन्ट
श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल, रतलाम।

श्री जवाहिराचार्य के व्याख्यान

१

समझ की भ्रांति

श्री शांति जिनेश्वर सायब सोलमा—प्रार्थना

प्रार्थना:—

इस गायन में सोलहवें तीर्थङ्कर भगवान श्री शांतिनाथ जी की प्रार्थना की गई है। परमात्मा की प्रार्थना में रहे हुए तत्त्व को समझाने के लिए बड़े बड़े ज्ञानी-ध्यानी विद्वानों ने प्रयत्न किया है मगर केवल समझाने मात्र से प्रार्थना का रहस्य समझ में नहीं आ सकता। नित्य प्रार्थना करते-करते ही यह तत्व समझ में आ सकता है। मैं प्रार्थना का स्वरूप बता देता हूं। किन्तु आचरण करना आप लोगों का कार्य है। मार्ग बतलाने वाला मार्ग बता देता है किन्तु चलनेवाला उस पर न चले तो मंजिल कैसे ते की जा सकती है। सच्चा मार्ग बताना उपकार का काम है। परमात्मा तक पहुंचने के लिए

प्रार्थना सच्चा मार्ग है। प्रार्थना के द्वारा प्रभु के निकट पहुंचा जा सकता है।

अनेक महापुरुषों एवं भक्तों ने भगवान से अपना मेल जोड़ने के लिए अनेक प्रकार के काव्य, छन्द आदि द्वारा देश-काल और स्वरुचि के अनुकूल प्रार्थनाएँ रचकर हमारे सामने रखी हैं। इस तरह हमारे लिए उन्होंने सुगमता करदी है। अनेक भक्तों ने जुदी-जुदी भाषा और जुदे-जुदे तरीकों से भगवान का गुणगान किया है, प्रार्थना की है। प्रार्थना का भाव तो पुराना ही है मगर उस भाव को व्यक्त करने का तरीका नया है, जुदा है। पहले से कुछ सरल है। हमें इससे लाभ लेना चाहिए।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि परमात्मा की प्रार्थना क्योंकर करना चाहिए। क्या किसी कामना की पूर्ति कराने के लिए प्रार्थना करनी है? इसका उत्तर साफ है। और वह यह है कि कामना की पूर्ति के लिए प्रार्थना नहीं करना चाहिए। कामना मात्र मिटाने की प्रार्थना होनी चाहिए। कामनाओं की पूर्ति तो कभी हो ही नहीं सकती। एक कामना की पूर्ति हो जाने पर दूसरी अनेक कामनाएँ हाथ फैलाकर खड़ी हो जाती हैं। अतः भगवान से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि हे प्रभो! मेरी कामना का ही नाश हो जाना चाहिए। मैं निष्काम बन जाऊं।

बन्धुओ! आपके हृदय में विषय-वासना की आग प्रज्वलित हो रही है। उस आग को प्रार्थना रूपी जल सिञ्चन

के द्वारा शांत करना चाहिए। जिस प्रकार केवल बातों से अग्नि शांत नहीं होती उसी प्रकार विषयरूपी दावानल भी बातों से शांत नहीं हो सकता। सच्चे हृदय से की हुई प्रार्थना से विषय कषाय की आग तुरंत बुझ जाती है प्रार्थना आन्तरिक रोगों के नाश की रामबाण दवा है। अनेक ज्ञानियों द्वारा अनुभूत प्रयोग है। आपभी प्रयोग करके देखिये।

हमारी प्रार्थना की सार्थकता विषय कषाय के शांत होने पर निर्भर है यदि प्रार्थना करते-करते विषय-वासना कम होने के बजाय बढ़ती जाती है तो समझना चाहिए कि हमने दिल से-हृदय से प्रार्थना नहीं की है। केवल मुख से उच्चारण मात्र किया है। मौखिक उच्चारण से कार्य सिद्ध नहीं होता। प्रार्थना हृदय से निकलनी चाहिए। अनन्त और अटूट श्रद्धा के साथ प्रार्थना के शब्दों का उच्चारण करना चाहिए। मन की तरंगों और कामनाओं की अग्नि को शांत और नाश करने के लिए ही प्रभुमय बनकर प्रार्थना करनी चाहिए। ऐसी प्रार्थना से विषय भोग रूपी तुच्छ भावनाओं को मिटना ही पड़ेगा।

प्रार्थना करने से मानव कृतकृत्य हो जाता है। कहा भी है—

'यल्लब्ध्वा पुमान् सिद्धो भवति अमृतो भवति तृप्तो भवति'

प्रार्थना करते करते मनुष्य सिद्ध—कृतकृत्य--होजाता है। अमृत—अमर—होजाता है। तृप्त—आशा तृष्णा रहित होजाता

है। उसे मृत्यु का भय भी नहीं रहता। उसे ऐसी तृप्ति और संतुष्टि हो जाती है कि किसी भी वस्तु की कामना ही शेष नहीं रहती। यही प्रार्थना की पहचान है। ऐसी प्रार्थना करके विषयेच्छा का शमन करो।

शास्त्र—

अब यही बात गणधर प्रणीत शास्त्र द्वारा कहता हूं। सूत्र श्री उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन में महामुनि सनाथी मगधाधिपति राजा श्रेणिक को सनाथ-अनाथ का स्वरूप समझाते हैं।

इसी प्रसंग में राजा श्रेणिक महामुनी सनाथी से कहता है कि मेरे आधिपत्य में बड़े-बड़े घोड़े हैं, मदोन्मत्त हाथी हैं, छत्रधारी अनेक नरेशों की कन्याएँ मेरी रानियां हैं, महान् नगर मेरे राज्य में सम्मिलित हैं, मेरी आज्ञा सर्वत्र अविकल रूप से मानी जाती है, मैं आज्ञा का ईश्वर हूं। अर्थात् सर्व सुख मेरे स्वाधीन हैं। फिर हे महामुने! आप मुझे अनाथ क्यों कह रहे हैं? आप मुनीव्रत धारण करके भी असत्य भाषण कर रहे हैं?

सुज्ञ श्रावको! जरा ध्यान लगाकर इस पर गौर करिये कि अढलक ऋद्धि में सम्पन्न श्रेणिक राजा को भी जब महामुनि सनाथी, अनाथ बता रहे हैं, तब आप हम किस गिनती में हैं। मगधाधीश अपनी सनाथता सिद्ध करने के लिए जो बातें बता रहा है, जो कुछ दलीलें पेश कर

रहा है, उन्हे आप व्यर्थ मान रहे हैं न ? क्योंकि आपने शास्त्र सुने हैं और शास्त्रों में लिखा है कि भौतिक ऋद्धि-सिद्धि के कारण कोई सनाथ नहीं हो सकता। सनाथता प्राप्त करने के लिए भौतिक ऋद्धियों का त्याग आवश्यक है। पराधीनता में सुख नहीं है, सुख स्वाधीनता में है। जो सुख किसी वस्तु पर आश्रित होता है वह उस वस्तु के हटते ही दूर हट जाता है। किन्तु जो सुख आत्मा के निज गुणों में विकसित होता है वह स्थायी होता है, टिकाऊ होता है। त्याग जन्य सुख स्वाधीन होता है, भोग-जन्य सुख पराधीन होता है। यही सब बातें शास्त्राधार से सुनकर आप लोग मानते हैं कि श्रेणिक राजा की सनाथता के लिए बताई हुई पराधीन अप्रामाणिक है, गल्त है।

मित्रों ! शास्त्र सुनकर दूसरों की तरफ तो देखते हो मगर अपनी तरफ निगाह क्यों नहीं करते। आपको भी तो जरा-जरा सी चीजों पर अभिमान आ जाता है। नई जूतियां पहन कर लोग बड़ी अकड़ के साथ चलते हैं। जूतियों का भी अभिमान ! तो फिर अन्य वस्तुओं के लिए क्या कहा जाय ! यह सब सनाथ-अनाथ का स्वरूप न समझने का नतीजा है। आप सनाथ हैं या अनाथ इस बात पर विचार करिये। अभी न तो श्रेणिक राजा है और न सनाथी मुनी। यहां तो अभी आप और मैं हूं। उनका चरित्र सुनकर अपने ऊपर घटाइये उनके चरित्र से अपना सुधार कीजिये। यदि चरित्र सुनकर अपना सुधार न किया तो सुनने का पुण्य तो होगा मगर पूर्ण लाभ न होगा। पूर्ण लाभ तभी होगा जब अपना सुधार करेंगे।

मगध नरेश श्रेणिक मुनि से कहता है कि हे महात्मन्, आप मोक्ष मार्ग के साधक हैं, आपने असत्य भाषण का सर्वथा त्याग किया है। आप जैसे महात्मा भी झूठ बोलने लग जायंगे तो गजब हो जायगा। सूर्य द्वारा प्रकाश के बजाय अन्धकार फैलाना, चन्द्र द्वारा शीतलता के बजाय ताप प्रदान करना और पृथ्वी द्वारा आधार न देना जिस प्रकार आश्चर्य-कारक माना जाता है, उसी प्रकार किसी मुनि द्वारा असत्य भाषण करना भी महान आश्चर्य का विषय है। आपको झूठ न बोलना चाहिए। मैं शासक हूं अतः मेरा फर्ज है कि मैं सब को अपना-अपना कर्त्तव्य अदा करने के लिए प्रेरित करूं। शास्त्रों में मुनिके लिए असत्य भाषण सर्वथा वर्जित है। आपने मुझे अनाथ कहा इसकी मुझे उतनी चिन्ता नहीं है जितनी एक मुनि द्वारा असत्य भाषण करने की है। मुझे अनाथ कहने से आपको झूठ का पातक लगा है।

श्रेणिक राजा के इस कथन से यदि कोई साधारण मुनि होता तो वह नाराज हो जाता। रुष्ट होकर कोई शाप दे डालता। किन्तु ये तो क्षमाशूर तपोधन महामुनि सनाथी हैं समुद्र के समान गंभीर और मेरु पर्वत के समान अडोल हैं ऐसे शब्दों से इन मुनि के आत्म-समुद्र में एक लहर भी नहीं उठती। राजा की समझ में ही दोष है यह मान कर राजा को सत्-असत् का विवेक कराने के लिए मुनि कहते हैं —

न तुमं जाणे अणाहस्स अत्थं पुत्थं च पत्थिव।
जहाअणाहो भवइ सणाहो वा नराहिवा ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राजन् तू अनाथ शब्द का अर्थ और व्युत्पत्ति नहीं जानता है और न यह जानता है कि अनाथ किस प्रकार होता है और सनाथ किस प्रकार।

हे नराधिप! तेरे हृदय में अज्ञानान्धकार भरा हुआ है इसले तू ऐसा कहता है कि मैं सम्पत्ति के कारण नाथ हूं। तेरी समझ में वही नाथ है जो धनवान, कुटुम्बवान और शक्तिशाली हो। द्रव्यहीन और कुटुम्ब-हीन को तू अनाथ समझता है इस में राजन् तेरा कोई दोष नहीं है। दोष तेरी समझ में है।

मुनि ने राजा से जो कुछ कहा है उस पर गहराई से विचार करने पर संसार की बहुतसी बातें हल हो जाती है। आज संसार में बड़ी २ लड़ाइयां होती हैं, उनके मूल में अज्ञान के सिवा अन्य कोई कारण नहीं है। वस्तु स्थिति कुछ और है और समझ कुछ और लिया जाता है। इसी गलत-फहमी के कारण द्वेष भाव बढ़ता जाता है और एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र के साथ लड़ाई करने लगता है। समझ की कमी के कारण कितना अनर्थ फैल जाता है, इसका एक नमूना आपके सामने पेश करता हूं।

पन्द्रह कर्मादानों के अर्थ के विषय में बड़ा भ्रम फैला हुआ है। इसी भ्रम के कारण बहुत से भाई कहते हैं कि यदि पन्द्रह कर्मादानों में बताये गये कर्म न करें तो जीवन निर्वाह बहुत कठिन हो जाता है। अतः इनमें छूट होनी चाहिए। शास्त्रों में भगवान ने तो पन्द्रह कर्मादान श्रावक के लिए सर्वथा त्याज्य अर्थात् अनाचरणीय बतलाये हैं।

'पण्णरस्स कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं न समायरियव्वाइं'

अर्थात पन्द्रह कर्मादान श्रावक को जानना चहिये किन्तु आचारण में नहीं लाना चाहिए। जो वात श्रावक अवस्था में रहते हुए अशक्यानुष्ठान हो उसको निषेध तीर्थङ्कर भगवान स्वयं नहीं करते। कोई आगार अवश्य रख देते। आगार नहीं रखा गया है इसी से पता चलता है कि पन्द्रह कर्मादान श्रावकों के लिये वर्जनीय है। पन्द्रह कर्मादानों में वताये हुए कार्य न करने से श्रावक की आजीविका में किसी प्रकार की वाधा नहीं आ सकती।

वन्धुओं! दर असल वात यह है कि हमारे वहुत से भाई और साधु मुनिराज भी पन्द्रह कर्मादान का अर्थ ठीक ठीक नहीं समझते। इसीलिए उनमें छूट रख देने की वात कहते हैं

भगवान् ने श्रावक के लिए तीन प्रकार के कार्य निषिद्ध कहे हैं। १ इहलोक विरुद्ध २ परलोक विरुद्ध ३ इह पर लोक विरुद्ध। १ जो कार्य इस लोक के लिए विरुद्ध हो, चाहे वह परलोक के लिए अच्छा ही क्यों न हो श्रावक के लिए त्याज्य है २ इसी प्रकार जो कार्य परलोक के लिए विरुद्ध हो, परलोक में दुःख दायी फल देनेवाला हो वह भी श्रावक के लिए वर्जनीय है। ३ जो कार्य इसभव और परभव दोनों में दुःखदायी हो वह भी हेय है।

पन्द्रह कर्मादान परलोक के लिए विरुद्ध हैं अर्थात् इन के सेवन करने से दुर्गति होती है, इसीलिए भगवान ने इनके

आचरण का निषेध किया है। आजकल साम्प्रदायिकता के आग्रह के कारण एक-दूसरे की न्याय-संगत और शास्त्र सम्मत बात मानना भी कठिन है। किन्तु प्राचीन टीका के आधार से यदि इनका एक असली अर्थ समझा जाय तो पता लगे कि इनके निषेध का क्या उद्देश्य है। हमने जो पन्द्रह कर्मादानों की व्याख्या की है वह हरीभद्रीय टीका के आधार से की है। हरीभद्रीय टीका पर जैनों का बहुत आधार है। यद्यपि हरीभद्रीय से कुछ साम्प्रदायिक मतभेद है फिर भी उनकी टीका को अर्थज्ञान के लिए बहुत आधार-भूत माना जाता है।

पन्द्रह कर्मादानों का संकुचित अर्थ किस प्रकार किया जाता है उसके लिए एक 'केसवाणिज्जे' शब्द को ही लीजिये। कई लोग केसवाणिज्जे का अर्थ, ऊन व ऊनी वस्त्रों का व्यापार करना कहते हैं। और कई लोग तो इनसे भी आगे बढ़कर सूत व सूती वस्त्रों के व्यापार को भी केशवाणिज्य में शामिल करते हैं। इनकी दलील है कि कपास भी एक प्रकार के पौधे का ही केश है। इस प्रकार संकुचित अर्थ किया जाता है। किन्तु हरीभद्रीय टीका में केशवाणिज्य का अर्थ करते हुए केश शब्द को लक्षणा माना जाता है। अर्थात् लक्षणा से केश शब्द का अर्थ केवल केश न करके केशवाली दासियां किया गया है। पहले जमाने में सुन्दर केशोंवाली दासियों को एक देश से दूसरे देश में बेचने का धंधा किया जाता था। ऐसा धंधा करना श्रावक के लिए वर्जित है। मुसलमानों की हदीसों में भी इंसान का बेचना गुनाह माना गया है। आज की हमारी सरकार भी दासदासी के विक्रय को अपराध मानती

है। कहिये ऐसा धन्धा यदि श्रावक न करे तो उसकी आजीविका में क्या वाधा उपस्थित हो सकती है? मेरे खयाल में कोई वाधा नहीं मालूम देती।

शास्त्र का अर्थ बहुत ज्ञानियों के अनुभव और विचारों को ध्यान में लेकर करना चाहिए। अन्यथा राजा श्रेणिक की तरह भ्रम पैदा होने की संभावना रहती है। मुनि के गूढ़ आशय को न समझते हुए राजा ने मृषा-भाषण करने तक का उपालम्भ दे डाला है। इतने पर भी मुनि रुष्ट नहीं हुए। अपने कथन पर स्थिर हैं। हम लोगों का भी कर्तव्य है कि हम अपनी सच्ची वात पर अड़े रहें और दूसरों के समक्ष उसकी उपादेयता सिद्ध करें।

मुनि, राजा से कहते हैं कि हे राजन्! तू सनाथ-अनाथ का वास्तविक अर्थ नहीं जानता है। जिसको कोई खाने-पीने के लिए देनेवाला न हो, जो गरीव हो, असहाय हो वह अनाथ है, यह जग प्रसिद्ध अनाथ शब्द की व्याख्या लौकिक व्याख्या है। मैंने किस अर्थ और व्युत्पत्ति को लक्ष्य में लेकर वात कही है वह तू नहीं समझा।

न समझने के कारण राजा ने दूसरा अर्थ लगाया है। इसी प्रकार आप भी तो नहीं करते हैं, विचार करिये। यदि कोई वात समझ में न आवे तो राजा की तरह पूछ लेना चाहिए। किन्तु कुछ का कुछ अर्थ न कर बैठना चाहिए। कोई वात ऊपर से कुछ और लगती है और भीतर में कुछ

और रहस्य छिपा रहता है। इसके संबंध में राजा भोज के समय की एक कहानी प्रसिद्ध है।

एक ब्राह्मण जो कि प्रसिद्ध विद्वान् था, जुआरी हो गया। जुआरी आदमी को कैसी-कैसी आपत्ति में से गुजरना पड़ता है, यह सर्व-विदित बात है। जुआरी में धीरे-धीरे चोरी करने का दुर्गुण भी आ जाता है। पहले घर की चोरी शुरू करता है, जब घर का सब सामान खत्म हो जाता है तब दूसरों के यहां चोरी करता है। यहां तक देखा गया है कि जुआरियों ने गहनों के लिए अपने बच्चों और स्त्रियों तक की हत्या कर डाली है।

वह ब्राह्मण भी जुए में धन हार कर घर के सामान की चोरी करने लगा। इसके घर के लोग उसका अनादर और घृणा करने लगे। जब घर का सामान चुराने की गुंजायश न रही तब वह विद्वान् ब्राह्मण विचार करने लगा कि अब क्या करना चाहिए। अब तो बाहर की चोरी करनी चाहिए। पैसे के अभाव में मेरी स्त्री भी मेरा अनादर करने लगी है। यह दुर्दशा केवल जुए में फंस जाने के कारण उपस्थित हुई है। जुए के कारण मुझे चोर बनना पड़ा है। किन्तु अब मुझे कोई दूसरा काम नहीं सूझता है। अब सोच-समझकर कार्य करना चाहिए जिससे पीछे पछताना न पड़े। चोरी तो करना है मगर समझदारी पूर्वक करना है। किसी गरीब के घर चोरी करूंगा तो उसे बड़ा दुःख होगा। पैसा प्राण समान प्यारा होता है। अतः किसी गरीब को दुःख पहुंचाना उचित

नहीं है। गरीब के यहां चोरी करने से मेरी मनोकामना भी पूरी न होगी।

राजा बड़ा ऋद्धिशाली है। उसके खजाने में बहुमूल्य रत्न, जवाहर, सुवर्णमुद्रा आदि हैं। अतः वहीं चोरी करने से मेरी इच्छा पूरी हो सकती है। किन्तु राजा के भवन में चोरी करने के लिए पहले चोरी के व्यवसाय में निष्णात होना जरूरी है। चोरी की कला में अकुशल होऊंगा तो पकड़ा जाऊंगा और सजा पाऊंगा तथा पहले की तरह अपमानित भी। अतः वह चौर्यकर्म का अभ्यास करने लगा।

सुना जाता है कि आजकल पेरिस में चोरी करने की शिक्षा देने के लिए विधिवत् शिक्षणालय खुले हैं। वह ब्राह्मण कुछ दिन अभ्यास बढ़ाकर राजा के महल पर चढ़कर खजाना फाड़कर उसमें दाखिल हो गया। खजाने में दाखिल होकर वह विचार करने लगा कि क्या २ लेना चाहिये। यहां रत्न हैं, सुवर्ण मुद्राएँ हैं और रुपये भी हैं। रत्न की चोरी का फल शास्त्र में बड़ा बताया गया है। शास्त्र-निषिद्ध कार्य करने का फल बुरा होता है। पहले भी मैंने बिना विचारे कार्य किया था जिसका दुष्परिणाम मुझे भोगना पड़ा है। अब सोच-समझ कर कदम उठाना चाहिए। रत्न बहुमूल्य होता है। उसकी कीमत यदि एक लाख रुपये होगी तो खरीदने वाला मुझे दस-बीस हजार ही देकर टरका देगा। पाप बड़ा होगा और लाभ थोड़ा होगा। अतः रत्न तो न चुराने चाहिए।

ब्राह्मण रत्न का विचार छोड़कर सुवर्ण मुद्राओं का विचार करने लगा। सुवर्ण मुद्रा का मूल्य उतना कम न मिलेगा जितना रत्न का। यह विचार करते २ उसे शास्त्र की बात याद आ गई। शास्त्र में लिखा है कि सुवर्ण में कलियुग का वास है। मेरी बुद्धि पहले ही भ्रष्ट हो रही है। यदि सुवर्ण मुहर लेऊंगा तो बुद्धि और अधिक भ्रष्ट हो जायगी। बुद्धि के भ्रष्ट होने से अनेक विकार मगज में पैदा हो जाते हैं। विकारों के कारण मेरा मगज अस्थिर हो जायगा तथा दुःख परम्परा आ पड़ेगी।

फिर चांदी की तरफ उसका ध्यान गया। सोचने लगा कि चांदी भारी होती है और सस्ती भी। बहुत अधिक प्रमाण में चांदी लेऊं तब मेरा काम बन सकता है। बहुत अधिक चांदी सिर पर उठाकर राजभवन से नीचे उतरते उतरते कहीं फिसल पड़ा तो जान से हाथ धोना पड़ेगा। फिर यह चांदी क्या काम आयेगी। अतः चांदी भी न लेनी चाहिये। तो क्या पैसे लेऊं? जब मैंने रत्न सुवर्ण और चांदी पर भी नियत न बिगाड़ी तो पैसों पर क्या नियत बिगाड़ूं। अब क्या करना चाहिए इस विषय में वह गंभीर हो गया। घर पर बाल बच्चे भूखे हैं। प्रातः होते ही ब्राह्मणी अन्न मांगेगी तब क्या उत्तर दूंगा। पेट को भाड़ा तो देना ही होगा।

इसी विचार मे वह मुश्गूल था की एकाएक उसकी नजर एक कोने में पड़े चांवलों के ढेर पर गई। उसने सोचा बस ये चावल लेना ठीक है। इन से कुछ दिन काम चल

जायगा। चांवलों की पोटली बांधकर ज्योंही वह जाने के लिए तय्यार हुआ कि अकस्मात् उसे कुछ आवाज सुनाई दी।

कुछ दूरी पर राजा और रानी छत में सोए हुए थे। रानी के मुख पर चांदनी छिटक रही थी जिससे उसके मुख की शोभा और अधिक बढ़ गई थी। राजा की भी नींद खुल गई। रानी के मुख की सुन्दरता देखकर राजा का अभिमान जाग्रत हो गया। वह राजा कवि भी था अतः अपने वैभव का वर्णन करने के लिए श्लोक बनाने लगा। श्लोक के ये तीन चरण तो वह बना चुका मगर बार २ दोहराने पर भी वह चौथा पद न बना सका।

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः सुजन गर्भगिरश्च भृत्याः।
गर्जन्ति हस्तिनिवहा स्तर लास्तुरङ्गाः
....॥

इन तीनों पदों का अर्थ यह है कि मैं कैसा सौभागी हूं कि मुझे चित्त को चुराने वाली ये सुन्दरी युवतियां मिली हुई हैं। मेरे मित्र मेरे अनुकूल हैं। संसार में सन्मित्र का मिलना बड़ा दुर्लभ है। ऊपर से मिठा बोलने वाले और पेट में छुरी रखने वाले मित्र बहुत होते हैं। किन्तु मेरा सद्भाग्य है कि मुझे सच्चे मित्र मिले हैं जो सदा मेरे अनुकूल कार्य करते हैं। मेरे बांधव-भाई भतीजे भी बड़े योग्य हैं। मुझ से ईर्षा द्वेष न रखकर मेरे कार्य में सहयोग देते हैं।

दूसरों के वान्धव तो स्वयं राज्य करना चाहते हैं किन्तु मेरे वन्धु मेरे राज्य करने में सहायक हैं। मुझे राज्य करते देखकर उन्हें वड़ी प्रसन्नता होती है। मुझे नौकर भी वड़े आज्ञाकारी मिले हैं। सदा मेरी सेवा में तत्पर रहते हैं। मेरे लिए रात-दिन एक कर डालते हैं। वड़े २ दांतवाले मदोन्मत हाथी और चपल घोड़े मेरे यहां मौजूद हैं। अहो! मैं कितना भाग्यशाली हूं।

इस प्रकार तीन चरण वना कर राजा फूला न समारहा था किन्तु वार वार परिश्रम करने पर भी वह चौथा चरण नहीं वना पा रहा था। तीन चरणों को ही वारम्वार दोहरा रहा था। वह विद्वान ब्राह्मण चोर, राजा द्वारा वारम्वार वोले जाते हुए इन तीन चरणों को सुन रहा था। उसके दिल में आया कि राजा को अपनी सम्पत्ति का गर्व हो गया है। मुझे जिस प्रकार काल का भय होता है इस को वैसा भय नहीं है। इस का अभिमान चूर करना चाहिए। रोगी को कडवी औपधि पसन्द नहीं होती किन्तु उसके हित के लिए कडवी दवा देना आवश्यक है वैसे ही इस राजा को रूचे या न रुचे हितकारी शिक्षा देना चाहिए। मैने चांवल की चोरी की है, रत्न मुहर आदि की नहीं। पकडा मै अवश्य जाऊगा। थोडी वहुत सजा दे लेगा। किन्तु हितशिक्षा देकर इस का अभिमान खंडित करना चहिए।

ऐसा विचार करके उस ब्राह्मण ने राजा के श्लोक का चौथा चरण इस प्रकार वना कर वोल दिया

'सम्मिलन नयनयो र्न हि किञ्चिदस्ति'

अर्थात्–नयन बन्द हो जाने पर अर्थात् मौत आ जाने पर यह सब ऋद्धि सिद्धि और ऐश आराम का साजोसामान कुछ नहीं है। किसी काम का नहीं है। आंख बन्द होने पर यह सब पराया हो जायगा। जब काल उपस्थित हो जाता है तब ये सुन्दरी युवतियां और हाथी घोड़े आड़े नहीं आ सकते।

ब्राह्मण द्वारा यह चतुर्थ पद सुनकर राजा चकित रह गया। अरे! इस वक्त गुरु के समान हित शिक्षा देनेवाला यह कौन है? अपने चौकीदार सिपाही को बुलाकर कहा कि देखो यह कौन व्यक्ति है, पकड़ कर मेरे सामने उपस्थित करो। राजाज्ञा होते ही अक्खड़ मक्कड़ खां की तरह सिपाही लोग दौड़े और उस ब्राह्मण को पकड़ कर राजा के पास ले आये।

राजा ने पूछा तुम कौन हो? क्या ब्राह्मण हो? ब्राह्मण ने उत्तर दिया, नहीं मैं चोर हूं। राजाने साश्चर्य प्रश्न दुहराया, क्या चोर हो? ब्राह्मण ने कहा महाराज! मैं केवल चोर ही नहीं हूं किन्तु जुआरी भी हूं। यहां क्यों आये पूछे जाने पर ब्राह्मण ने कहा कि चोरी करने के लिए आया हूं और ये चावल चुराये हैं। राजा ने गठरी खुलवा कर देखी तो वास्तव में उस गठरी में चांवल ही निकले। राजाने कहा कि तेरा दुर्भाग्य यहां भी साथ ही रहा जो रत्न सुवर्ण मुहरे रुपये आदि छोड़कर केवल चांवल चुराये हैं। चोर ने उत्तर दिया कि महाराज इसकी कथा लम्बी है। आपको जो सजा देनी हो दीजिये।

इसकी कथा मत पूछिये। मैं ये चावल घर ले जाकर अपने बाल-बच्चों के साथ खाता। अब आपकी जेल में खाने पड़ेंगे।

राजा बड़ा बुद्धिमान था। उसने समझ लिया कि इस व्यक्ति का अज्ञान दूर हो गया है। चोरी की है मगर मजबूरी के वशीभूत होकर की है। राजा द्वारा चोरी की कहानी सुनने का आग्रह करने पर ब्राह्मण ने कहाः–महाराज! कथा सुन लेने पर आप मुझे चोरी की सजा न देंगे। अतः न सुनना ही अच्छा है। किन्तु राजा के अति आग्रह करने पर ब्राह्मण ने आदि से अन्त तक सारी बात कह सुनाई। किस प्रकार जुआरी बना, किस प्रकार घर की चोरी करने लगा और अन्त में राज-महल में कैसे पहूंचा। रत्न सुवर्ण और रुपयों की चोरी न करके केवल पेट भरने के लिए चावल ही क्यों चुराये आदि सब हकीकत कह सुनाई।

भाइयों! यह ब्राह्मण चोर रहा या साहूकार? इसने चांवल की चूरी तो चुराई है मगर साथ में रत्न सुवर्ण और रुपयों का मोह कितना त्यागा है। रत्न सुवर्ण और रुपयों का लोभ छोड़ना बड़ा कठिन है। इस ब्राह्मण ने ज्ञान पूर्वक विवेक पूर्वक रत्नादि का त्याग किया है। भयपूर्वक या अन्य किसी कारण से लोभ नहीं छोड़ा है किन्तु परलोक के भय से ज्ञान पूर्वक लोभ छोड़ा है।

राजा कहने लगा–ब्राह्मण! तुम्हारी हिम्मत प्रशन्सा करने योग्य है। तुमने सब बातें सच सच बता दी। तुझे किंचित् भी डर न लगा। और मैं तुम्हारी विद्वता पर भी मुग्ध

हूं । बड़े यत्न के बावजूद भी मैं अपने श्लोक का चतुर्थ चरण न बना सका किन्तु तुमने तुरंत बना दिया और मेरा अभिमान गलित कर दिया । उसी वक्त राजा ने भण्डारी को बुलाकर हुक्म दिया कि इस ब्राह्मण को इन चावलों के बराबर तोलकर रत्न दे दो ।

राजा की आज्ञा सुनकर ब्राह्मण कहने लगा—महाराज ! मुझपर यह क्या आपत्ति डाल रहे हैं ? मैं गरीब ब्राह्मण इन रत्नों को कहां संभालूंगा । ये रत्न तो आपके खजाने में ही शोभा पावेंगे । उधर भण्डारी विचार करने लगा कि राजा यह क्या कर रहा है । चोर को सजा न देकर उलटा रत्न दे रहा है । ऐसा करने से तो लोगों का हौंसला बढ़ जायगा और चोरों की तादाद बढ़ जायगी भण्डारी ने अपने मन की बात राजा को कह सुनाई

राजाने कहा—भण्डारी ! तुम ऊपर ऊपर की बात देख रहे हो । बहुत सी बातें ऐसी होती हैं जो ऊपर से कुछ और नज़र आती हैं मगर भीतर कुछ और होता है । असलियत समझना कठिन काम है इस ब्राह्मण ने कितना त्याग किया है ? रत्नादि के रहते हुए उन्हें न लेकर पेट पालने के लिए केवल चांवल ही इसने चुराये हैं । इतना लोभ त्यागना कितना कठिन है । पहले तो ऐसा आदमी होना ही कठिन है । यदि है भी तो मैं इसकी संभाल करूंगा ।

जैसे राजा ने भण्डारी की आंखें खोली हैं आप लोग भी अपनी आंखें खोलें । आप श्रावक हैं अतः आपके द्वारा

अन्याय और अनीति पूर्वक व्यापार धन्धा न होना चाहिए। आप यदि संसार की माया पर न ललचा कर मर्यादापूर्वक जीवन व्यतीत करेंगे तो कभी दुःखी न होंगे।

कहने का मतलब यह है कि कोई बात बाहर से कैसी होती है और वास्तव में कैसी होती है, यह सबके समझ में नहीं आती। राजा भोज ने भण्डारी को जिस तरह वस्तु-स्थिति का ज्ञान कराया था उसी तरह सनाथी मुनि भी श्रेणिक राजा को वस्तु स्थिति का बोध कराने के लिए कहते हैं कि राजन्! तुम सनाथ और अनाथ का वास्तविक अर्थ नहीं जानते हो। मैं अपनी आप बीती सुनाकर अनाथ शब्द का अर्थ तुमको बताता हूं।

मुनि राजा को अनाथ शब्द की जो व्याख्या सुनाते हैं, उसे सुनकर यदि आप भी त्याग करेंगे तो आत्मा का वास्तविक हित साधन होगा। जिन वस्तुओं का आप त्याग करते हैं, आप समझते होंगे कि हम उन्हें छोड रहे हैं। किन्तु दर-असल बात यह है कि जिन चीजों में मनुष्य चिपका रहता है वे उसकी होती ही नहीं हैं। जिनको छोड देता है-त्यागकर देता है वे ही वास्तव में उसकी बन जाती हैं। इस बातपर विश्वास लाकर जितना अधिक त्यागधर्म अपनाओगे आत्मा का भला होगा।

चरित्र—

धर्मसाधना के लिए कुछ त्याग करना पड़ता है। त्याग तो मनुष्य को मजबूरी से भी करना पड़ता है। किन्तु

जो इच्छा पूर्वक त्याग करता है उसकी विशेषता है सुभग को शरीर तो छोड़ना ही पड़ता किन्तु उसने नवकार मंत्र के स्मरण पूर्वक छोड़ा तो सुदर्शन के रूप में अवतरित हुआ आपभी कुछ कुर्वानी करिये कुर्वानी का मतलब दो चार रुपयों में बकरा खरीदकर उसकी जान ले लेना ही नहीं है। किन्तु स्वार्थ त्याग करना कुर्वानी है। सुभग की तरह आपभी स्वार्थत्याग करेंगे तो कल्याण कारी फल प्राप्त होगा। यह बात दूसरी है कि त्याग का फल कभी इस भव में मिलता है और कभी उस भव में। किन्तु फल अवश्य मिलता है। त्याग का फल निष्फल नहीं जाता। कहा भी है--

"नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात ! गच्छति।"

भलाई का फल भलाई है और बुराई का फल बुराई है आमके वृक्ष के आम्रफल ही लगता है और नीम के निमोली ही। कल्याण के काम से कल्याण ही होता है, अकल्याण नहीं हो सकता। कल्याणकारी काम करने वाला दुर्गति में नहीं जा सकता।

सुभग ने अपनी अंतिम अवस्था में शुभ ध्यान रूप क्रिया की थी उसी के फलस्वरूप सुदर्शन सेठ बना है। शुभ से शुभ की वृद्धि होती है। शुभ परंपरा चालू रहती है। पर भव में प्राप्त उसी शुभ भावना के कारण इस भव में भी सुदर्शन की विचार धारा बड़ी शुभ है। इस लोक और परलोक को सुधारने के लिए वह विचार करता रहता है अर्थ और परमार्थ का विचार करके अपना विवाह किया है मनोरमा का

भी सब प्रकार से विकास हो चुकने पर विवाह हुआ है दोनो की बड़ी योग्य जोड़ी जुड़ी है ।

आजकल कहा जाता है कि वर और कन्या को अपना साथी स्वयं ही चुनना चाहिए। बीच में किसी को न पड़ना चाहिए। माता पिता या अन्य गुरुजनों को बीच में दखल देकर युवक युवतियों के जीवन को दुःखमय बनाने में निमित्त न बनना चाहिए जिन युवायुवतियों को जन्म भर एकसाथ अपना जीवन व्यतित करना है, उनका चुनाव उन्हें स्वयं करना चाहिए। किन्तु इस खयाल में थोड़ी भूल है। वर और कन्या के बीच में किसी बुद्धिमान और विवेकशील व्यक्ति की आवश्यकता रहती है। ऐसा न होने पर कभी कभी बड़ा अनर्थ हो जाता है । माता पिता और गुरुजन जो कि अपनी संतान के परम हितैषी होते हैं, अपनी जान में कभी खराब चुनाव न करेंगे। इसका अर्थ यह भी नहीं है कि युवक युव--तियों को अपना साथी चुनने में स्वयं कुछ भी भाग न लेना चाहिए। मेरे कहने का आशय यह है कि बुजुर्गों के ज्ञान और अनुभव का लाभ युवकों को लेना चाहिए। माता-पिता और गुरुजनों का भी कर्त्तव्य है कि वे लोभ के वशीभूत होकर अपनी कन्याओं और पुत्रों को अयोग्य जोडी में न बांधे।

वर विक्रय और कन्याविक्रय की बुरी प्रथा समाज में देखकर बड़ा खेद होता है। अमुक रकम देवे तभी हम कन्या दे सकते हैं और इतनी भेंट (टीका, डोरा तिलक) मिलने पर ही अपने पुत्र का सम्बन्ध कर सकते हैं, यह बुरी बात है। यह

तो सौदा हुआ। सौदे में कन्या और लड़के के गुण दोषों की तरफ उतना ध्यान नहीं रहता जितना रकम की तरफ रहता है। क्या ऐसा करना केश वाणिज्य में शामिल नहीं होता? कन्या और वर का विक्रय महान् अपराध है। इस प्रथा को आप स्वयं बन्द कर दीजिये। वर्ना सरकार को इसे रोकने के लिए कानून बनाना पड़ेगा। सरकारी कानून के दबाव से किसी प्रथा को रोकने से बेहतर यही है कि आप स्वयं उस प्रथा को रोकदें।

बाल विवाह को बंद करने के लिए बहुत उपदेश दिया गया किन्तु लोग न माने। आखिर में सरकार को कानून बनाना ही पड़ा। यदि शास्त्र में प्रतिपादित 'सरिसावया सरिसातया' पर ध्यान दिया जाता तो सामाजिक बातों में सरकार को बीच में न पड़ना पड़ता। धर्मशास्त्र की हितकारी बातों पर ध्यान देकर ही अपना सुधार क्यों नहीं कर लेते। क्यों राज्य को अपने सामाजिक हक हकूकों में हस्तक्षेप करने का मौका देते हो।

सुदर्शन और मनोरमा का विवाह हो चुका। विवाह के पश्चात् दोनों ने अपने धर्म गुरु की साक्षी से श्रावक व्रत अंगीकार किए। बहुत से लोग विवाह का अर्थ बहुत संकुचित करते हैं। विषयेच्छा या वासना पूर्ति के लिए विवाह की कल्पना करना कितनी निकृष्ट कल्पना है। वस्तुतः स्त्री और पुरुष विवाह की सांकल में बंध कर धर्माराधन में एक दूसरे के सहायक बनें तभी विवाह की सार्थकता है।

दोनों ने गुरु के समक्ष व्रत धारण किये हैं, इस में भी कुछ रहस्य रहा हुआ है। आज कल ऐसी धारणा युवक वर्ग में फैली हुई है कि गुरु या अन्य लोगों की साक्षी से व्रत नियम लेने की क्या आवश्यकता है। जो कुछ नियम या प्रतिज्ञा लेनी हो स्वयं ही ले लेना चाहिए। दिखावा करने की क्या जरूरत है। किन्तु इस धारणा में भूल है। गुरु के समक्ष या जाहिर त्याग प्रत्याख्यान करने से कभी उस त्याग प्रत्याख्यान को छोड़ देने का भी मन हो जावे तो लोक लज्जा के कारण भी पतन रुक जाता है। कई लोगों का ऐसा अनुभव सुना गया है कि मन ही मन में नियम लिए और जब मन ढीला हो गया कि नियम तोड़ डाले। यदि वे अन्य की साक्षी से नियम लेते तो नियम तोड़ते जरा विचार करना पड़ता और मन को मजबूत बनाकर नियम पर कायम रहना पड़ता।

गुरु की शर्म या लोक लज्जा के कारण लिए हुए व्रत नियमों का पालन करना कोई बुरी बात नहीं है। जब व्रत नियम लिए जाते हैं तब तो मन मजबूत होता है किन्तु बाद में कभी प्रलोभन वश मन कमजोर हो जाता है और गृहीत व्रत नियम को छोड़ने की इच्छा हो जाती है। यह तो मन की तरंग है ऐसी साधारण तरंग लोक लज्जा से रुक जावें तो क्या हर्ज है कालान्तर में पुनः मन मजबूत हो जाता है और प्रतिज्ञा पालन का आनन्द आने लगता है अतः व्रत नियम गुरु साक्षी से लेना अच्छा है।

मान लीजिये आपने झूठी साक्षी देने का त्याग किया है यदि यह त्याग लोगों की साक्षी में किया है तब तो कोर्ट

में जाकर किसी के लिए झूठी साक्षी देने में आप को बड़ा संकोच होगा। आप को विचार करना पड़ेगा कि यदि मैं झूठी गवाही दूंगा तो लोगों की निगाहों में गिर जाऊंगा, अपमानित होऊंगा। इन्ही कारणों से साक्षी पूर्वक व्रत नियमादि लेने की हमारी परम्परा है। मनोबल को कायम रखने में इस से बड़ी मदद मिलती है।

आनन्द श्रावक और उसकी स्त्री शिवानन्दा ने जिस तरह व्रत धारण किए थे उसी तरह सुदर्शन और मनोरमा ने भी बारह व्रत धारण किये हैं। दोनों शरीर और छाया के समान रहते हैं। छाया शरीर के बिना नहीं रह सकती। दोनों साथ रहते हैं। शरीर के झुकने पर छाया भी झुकती है। दोनों समान धर्म का पालन करते हैं और सुख पूर्वक रहते हैं पूर्व जन्म के पुण्योदय के प्रताप से ही ऐसी योग्य जोड़ी जुड़ा करती है। सीता और राम की तरह स्त्री पुरुष की जोड़ी मिलना दुर्लभ बात है। वह घर स्वर्ग है जिस में स्त्री और पुरुष में आपस में मीठा सम्बन्ध होता है। दोनों एक दूसरे का मन रखते हुए प्रेम पूर्ण व्यवहार करते हैं।

नवकार मंत्र के प्रभाव से ही सुदर्शन और मनोरमा की जोड़ी जुड़ी है। अच्छी भूमि में ही बीज ऊगता है और फूलता फलता है। नवकार मंत्र रुपी भूमि पर यह जोड़ी विकसित हुई है। इन दोनों के माता पिता भी ऐसी योग्य जोड़ी देख कर मन ही मन प्रसन्न होते थे और मन में खयाल लाते थे कि हमारी ही प्रतिकृति इन में उतर आई है। ग्रन्थों में लिखा

है कि माता पिता को समझना चाहिए कि पुत्र हमारे शरीर में से ही निकला है जिस प्रकार वैक्रिय लब्धि से एक शरीर में से दो शरीर बनाये जाते हैं उसी प्रकार पिता के शरीर में से पुत्र उत्पन्न होता है। आप हम देखते ही हैं कि पिता की आकृति तक पुत्र में उतर आती है।

सुदर्शन और मनोरमा स्थिर चित्त से धर्माराधन कर रहे हैं। अब आगे क्या होता है, इस का विचार आगे पर ज्ञात होगा।

१-८-३६
राजकोट

२

ब्रह्मचर्य की महिमा

कुन्थु जिन राज तू ऐसो, नहिं कोई देव तौं जैसो।

प्रार्थना—

यह सत्रहवें तीर्थंकर भगवान् कुन्थुनाथ की प्रार्थना है। आत्मा, परमात्मा को किस प्रकार गावे ध्यावे और मनावे इसकी अनेक रीतियां ज्ञानियों एवं भक्तों ने विविध प्रकार से प्रार्थनाएं करके अपने भावोद्गार के रूप में जनता के सामने रख दी हैं। ईश्वर तक पहुंचने के लिए अनेक मार्ग हैं। फिर भी हम साधारण जन किसी एक साधारण मार्ग पर लग जावें तभी हमारा एकीकरण हो सकता है और सफलता मिल सकती है।

बड़े २ ज्ञानी और भक्त-जन किस तरीके से भगवान की

प्रार्थना करते हैं यह बात उन्हीं के लिए सुलभ रहे। हमारे लिए उनका अपनाया हुवा तरीका काम नहीं आ सकता। हम अभी निची भूमिका पर हैं अतः हमारे लिए प्रार्थना का कोई साधारण तरीका ही उपयुक्त हो सकता है। अतः हमें यह देखना है कि प्रभु में तन्मय होने के लिए हमारे लिए कौनसा मार्ग सरल और सुलभ है। कई लोगों को इसकी जिज्ञासा होती है। प्रभुमय बनने के लिए मार्ग खोजते रहते हैं।

वर्तमान में समय की गति का प्रवाह कुछ उल्टा ही है। कई लोगों को प्रभु की प्रार्थना करने की बात तो दूर रही, प्रभु के नाम से ही चिढ़ है। वे कहते हैं भगवान या ईश्वर के कारण संसार में बड़े २ बखेड़े मचे हैं। किन्तु ऐसा वे अपने अज्ञान के कारण ही कहते हैं। कहने को तो वे कहते हैं कि ईश्वर है ही नहीं किन्तु जाने या अनजाने अन्तरात्मा में जो खेल हो रहा है, वह उन्हें परमात्मा की तरफ ढकेल रहा है। ज्ञानियों को इस बात का पक्का विश्वास है कि हर इन्सान में परमात्मा की शक्ति व खेल विद्यमान है। यही विश्वास शास्त्रों में व्यक्त किया गया है।

मुझे आज श्री संघ की तरफ से ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करने के लिए कहा गया है। किन्तु प्रार्थना मेरी आत्मा का विषय है अतः उस पर कुछ कहे बिना मुझ से नहीं रहा जाता। प्रार्थना के विषय में कुछ कहने से मेरी आत्मा को शान्ति मिलती है। मुझे शान्ति मिलने से आपको भी लाभ होगा।

मैंने जो प्रार्थना बोली है वह मेरे अकेले की नहीं है। किन्तु आप हम सब की है। आप कहेंगे कि हम लोगों की मंशा जाने बिना किस आधार पर से कहते हैं कि यह प्रार्थना सब लोगों की है। जबरदस्ती किसी पर कोई बात लादना कहां तक उचित है। किन्तु मैं कहता हूं कि आप चाहे ऊपर से ऐसा कहें परन्तु मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि प्रार्थना के बिना कोई भी व्यक्ति जीवन नहीं बीता सकता।

एक आदमी कहता है कि मुझे सूर्य के प्रकाश की जरूरत नहीं है। मैं अन्य प्रकार के प्रकाश से काम चला लेता हूं। क्या इस आदमी का कहना सत्य है? कदापि नहीं। सूर्य प्रकाश के बिना जीवन टिक ही नहीं सकता। रक्त की गति ही बन्द हो जावे और जीवन खतम हो जावे। अतः सूर्य प्रकाश को अनावश्यक बताने वाला भूल करता है। सूर्य प्रकाश सब के जीवन के लिए अनिवार्यरूप से आवश्यक है अतः वह सर्वत्र सुलभ भी है। कोई उसे स्वीकार करे या न करे वह सब के लिए उपस्थित ही रहता है जो उसे गाली दे या उसकी हस्ती को ही न माने उसके लिए भी वह मौजूद रहता है और लाभ पहुंचाता है। किसी के साथ भेदभाव का वर्ताव नहीं करता।

जब भौतिक सूर्य के सम्बन्ध में भी ऐसी बात है तब परमात्मा के लिए क्या कहना। परमात्मा के लिए कहा गया है:—

'सूर्यातिशायि महिमासि मुनीन्द्र लोके'

अर्थात् परमात्मा की महिमा तेज सूर्य के तेज से भी बढ़कर है। अनन्त सूर्यों के प्रकाश से भी परमात्मा का ज्ञान रूपी प्रकाश बढ़ कर है। उस प्रकाश के बिना जीवधारी प्राणि का एक क्षण भर के लिए भी काम नहीं चल सकता आप शंका करेंगे कि सूर्य को तो हम लोग प्रत्यक्ष देख रहे हैं। किन्तु परमात्मा हमारी नजर में नहीं आता। तब कैसे मान लें कि परमात्मा है और उसकी प्रार्थना करना जरूरी है। इसका उत्तर इतना ही है कि इन चमड़े की आंखों से परमात्मा दिखाई नहीं देता तो क्या हृदय चक्षु से भी नहीं दिखाई देता ? परमात्मा का वास हृदय में है। एकाग्रता पूर्वक ध्यान करने से उसकी सत्ता का बोध हो सकता है। बहुत सी बातें ऐसी हैं जो चर्म चक्षुओं से नहीं दिखाई देतीं किन्तु हैं अवश्य और उन पर विश्वास भी करना पड़ता है।

ज्ञानीजन कहते हैं कि हमारे पर विश्वास रखकर परमात्मा की प्रार्थना करो। कभी न कभी आपको भी उसकी सत्ता का ज्ञान हो जायगा। बचपन में आपको ज्ञान न होने पर भी माता के कथन पर विश्वास लाकर आप सांप आदि विषैले जानवरों से दूर रहे हैं। इससे आपको लाभ ही हुआ है। जब माता के कथन पर विश्वास करने से भी आपको लाभ हो सकता है। तो अनन्त मातृहृदय धारण करने वाले परम कृपालु ज्ञानियों के कथन पर विश्वास करने से आपको हानि कैसे हो सकती है। अतः परमात्मा पर विश्वास लाइये और सदा उसकी प्रार्थना करिये। हमारे लिए एक साथ मिलकर तन्मयता पूर्वक उसके भजन गाना प्रार्थना का सर्वसाधा-

रण तरीका है।

अब यह प्रश्न होता है कि परमात्मा पर विश्वास क्यों नहीं होता। इसका कारण है विश्वास की कमी और साधन का अभाव। ईश्वर पर विश्वास लाने के साधनों में ब्रह्मचर्य एक महान् साधन है।

ब्रह्मचर्य—

ब्रह्मचर्य किसी की ऊपरी उपज नहीं है किन्तु ज्ञानियों के हृदय की ऊपज है। जिन ज्ञानियों ने साधना करके अन्य अनेक सिद्धांत निश्चित किये हैं। उन्हीं ज्ञानियों ने स्वानुभव के आधार से ब्रह्मचर्य का सिद्धांत भी कायम किया है। ब्रह्मचर्य ऐसा विषय है जिस पर अनेक व्याख्यान दिए जायं तब भी उसकी व्याख्या और वर्णन पूरे नहीं हो सकते। एक दिन के एक व्याख्यान में उसके स्वरूप का वर्णन कैसे हो सकता है। फिर भी उसका वर्णन तो करना ही है। अतः पूर्ण को अपूर्ण रूप से कहता हूं सो सावधान होकर सुनिये।

संसार में कोई भी ऐसा मजहब या धर्म नहीं है जिसने अपने धर्मशास्त्र में ब्रह्मचर्य के गुणगान न किए हों। अन्य शास्त्रों के प्रमाण उपस्थित करने के पहले मैं जैनशास्त्रों से ही इस विषय में कुछ बताता हूं। जैन शास्त्र में कहा है:—

'जम्बू एत्तो य वंभचेरं तवनियम नाण दंसण चरित्त
सम्मत विणयमूलं। यम नियम गुणप्पहाण जुत्तं हिमवंत
महंत तेयमंत पसत्थ गंभीर थिमिय मज्झं।

भगवान सुधर्म स्वामी अपने शिष्य जम्बू अनगार से कहते हैं कि हे जम्बू! अब मैं ब्रह्मचर्य के विषय में तुमको कहता हूं। यह ब्रह्मचर्य तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है। यम नियम और प्रधान गुणों से युक्त है। हिमालय-पर्वत के समान महान् है। तेज-युक्त है, प्रशस्त गंभीर और स्थिर है।

पहले यह मालूम करें कि ब्रह्मचर्य कहते किसे हैं? ब्रह्मचर्य में दो शब्द हैं। एक ब्रह्म दूसरा चर्य। ब्रह्म का अर्थ है आत्मा और उसके ज्ञान दर्शन चारित्र बल वीर्य क्षमा संतोष आदि गुण। ब्रह्म शब्द में सब सद्गुणों का समावेश हो जाता है। इन सद्गुणों में रमण करना, विचरना, ब्रह्मचर्य कहलाता है। चर्य का अर्थ है विचरना, रमण करना। गुणों में तल्लीन रहना ही ब्रह्मचर्य का अर्थ है।

सुधर्म स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं कि जिस प्रकार वृक्ष में थड़ डाली पत्ते फल फूल आदि होते हैं। किन्तु इन सब का आधार मूल है। मूल के बिना फल फूल नहीं हो सकते। इसी प्रकार सब उत्तम क्रियाओं का आधार ब्रह्मचर्य है। जहां ब्रह्मचर्य है वहीं तप नियम आदि उत्तम क्रियाएं हैं। शुभ क्रियाओं में तप श्रेष्ठ क्रिया है। इसीसे इसे पहले बताया गया है। तप भी ब्रह्मचर्य के बिना नहीं हो सकता। कहा भी है:—

तपो वै ब्रह्मचर्यम्

अर्थात् ब्रह्मचर्य ही तप है। जिस तप में ब्रह्मचर्य नहीं है वह तप ही नहीं हो सकता। जब मूल ही न होगा तो शाखाएं कहां से होंगी। बिना ब्रह्मचर्य की तपस्या काया क्लेश मात्र है।

इसी प्रकार नियम ज्ञान दर्शन चारित्र सम्यक्त्व विनय आदि का मूल भी ब्रह्मचर्य है। यम यानी महाव्रत और नियम यानी त्याग प्रत्याख्यान। ब्रह्मचर्य पालन किए बिना महाव्रत ग्रहण करने और त्याग प्रत्याख्यान करने का कोई अर्थ नहीं होता। पर्वतों में जैसे हिमवान्-हिमालय बड़ा है वैसे ही यम नियमों में ब्रह्मचर्य महान् है।

आपने हिमालय पर्वत चाहे न भी देखा हो किन्तु उसके कारण आपको जो सुख शांति मिलती है उस पर यदि विचार करेंगे तो आपको मानना पड़ेगा कि उसका आप पर कितना महान् उपकार है। इसी प्रकार ब्रह्मचर्य की शक्ति पर विचार करने से आपको यह मानने के लिए बाध्य होना पड़ेगा कि आप में जो शक्ति है वह ब्रह्मचर्य की ही देन है। आप ब्रह्मचर्य की जितनी महिमा जानते हैं, शास्त्रों में उससे कई गुनी महिमा बताई हुई है।

कदाचित् आप कहें कि शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जैसा चमत्कार बताया गया है, वैसा चमत्कार आजकल क्यों नहीं दिखाई देता। क्यों नहीं आजकल भी शूली का सिंहासन होता हुआ दिखाई देता। वैसी हालत में कैसे मानें कि

शास्त्रीय वर्णन सत्य है। इसका उत्तर यह है कि ऐसे चमत्कार आपके देखने में नहीं आते किन्तु आपकी कल्पना में तो आते हैं न? आप कहेंगे, कल्पना में आया हुआ चमत्कार क्या काम का है। लेकिन कई बातें ऐसी होती हैं जो साक्षात् दीखने पर ही काम आती हैं और कई ऐसी भी होती हैं जो कल्पनामात्र से ही काम की होती हैं। यह बात मैं जबर्दस्ती मनाना नहीं चाहता किन्तु यदि आप गहराई से सोचेंगे तो मानना पड़ेगा।

आज बुद्धिवाद का जमाना है। अतः हर बात बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरने पर ही मानी जाती है। मैं भी यही कहता हूं कि मेरी बातको हृदय की कसौटी पर कसकर मानिये। प्रश्न यह है कि जो बात कल्पना में है वह हमारे दिमाग में कैसे आवे। इसके लिए दृष्टांत आपके सामने रखता हूं।

स्कूलों में ज्योमेट्रीक पढ़ने वाले छात्र रेखा-गणित में भूमध्य रेखा मानकर एक लकीर खींचते हैं। किन्तु वास्तव में भूमध्य रेखा होती ही नहीं है। केवल उसकी कल्पना की जाती है। भूमध्य रेखा की कल्पना किए बिना काम नहीं चल सकता अतः कल्पना करनी पड़ती है। इसी प्रकार पूर्ण ब्रह्मचर्य में सर्व शक्ति विद्यमान है यह बात यदि शास्त्रीय कल्पना ही हो तो भी आपको स्वीकार करने में क्या बाधा है। इस कल्पना को दृष्टि में रखकर यदि आप ब्रह्मचर्य की ओर गति करो तो आपको लाभ ही होगा। जैसे रेखा-गणित में भूमध्य रेखा मानना आवश्यक है वैसे ही ब्रह्मचर्य के लिए पूर्ण ब्रह्मचर्य को

आदर्श मानना जरूरी है। फिर चाहे यह आदर्श कल्पना
ही क्यों न हो। आंशिक ब्रह्मचर्य का पालन करने के लिए
ब्रह्मचर्य का लक्ष्य सामने रखे बिना काम नहीं चल सकत
इस कल्पना में लाभ है; नुक्सान कुछ भी नहीं है।

यह तो पूर्ण ब्रह्मचर्य की बात हुई। अब यह देखना
कि अपूर्ण ब्रह्मचर्य कैसा होता है और अपूर्ण ब्रह्मचर्य में
पूर्ण ब्रह्मचर्य तक कैसे पहुंचा जा सकता है। ज्ञानी कहते
कि समस्त इन्द्रियों पर काबू रखना, उन्हें विषयोपभोग
तरफ न जाने देना पूर्ण ब्रह्मचर्य है। केवल वीर्य-रक्षा क
यह अपूर्ण ब्रह्मचर्य है। आज वीर्य-रक्षा तक ही ब्रह्मचर्य
सीमा मानी जाती है किन्तु वस्तुतः समस्त इन्द्रियां
मन को विषय वासना की तरफ न जाने देना ही ब्रह्मचर्य
पूर्ण सीमा है। वीर्य रक्षा रूप अपूर्ण ब्रह्मचर्य के द्वारा
ब्रह्मचर्य तक पहुंचा जा सकता है। साधना पथ में बढ़ने
के लिए वीर्यरक्षा प्रथम सीढ़ी है। इसका पालन होना अत
आवश्यक है। इसके बिना आगे की सब बातें थोथी होती

उत्तराध्ययन सूत्र के सोलहवें अध्ययन की नियु
में ब्रह्मचर्य के चार भेद बताये हैं। १ नाम ब्रह्मचर्य २ स्था
ब्रह्मचर्य ३ द्रव्य ब्रह्मचर्य ४ भाव ब्रह्मचर्य। जो नाम से ब्र
चारी पुकारा जाता है किन्तु ब्रह्मचर्य का पालन नहीं क
वह नाम ब्रह्मचारी है। कई लोग दुनियां में अपने को अ
कहलाने के लोभ से ब्रह्मचारी का नाम धराते हैं किन्तु उस
पालन नहीं करते। वे अपने को और दुनिया को दोनों

ठगते हैं। हीरा मोती पहनने वालों का लोगों में आदर देखकर कई लोग नकली (कलचर) हीरा मोती पहनकर दुनिया का आदर प्राप्त करने की कोशिश करते हैं किन्तु सच्चाई छिप नहीं सकती। उनका यह कार्य नखरे दिखाकर दुनिया को ठगने के सिवा और कुछ नहीं है।

स्थापना ब्रह्मचारी वह है जो स्वयं तो ब्रह्मचर्य नहीं पालता किन्तु ब्रह्मचारी की मूर्ति स्थापित कर उसको मानता है। उससे अपना कार्य सिद्ध होना मानता है। किन्तु इससे उसको कोई लाभ नहीं हो सकता। जिस गुण के कारण उसकी मूर्ति मान रहे हो उस गुण का पालन स्वयं करोगे तभी लाभ हो सकता है।

तीसरा द्रव्य ब्रह्मचर्य है। शारीरिक शक्ति प्राप्त करने के लिए जो ब्रह्मचर्य पाला जाता है वह द्रव्य ब्रह्मचर्य है। इससे शारीरिक शक्ति मात्र प्राप्त होती है। कहा भी है:—

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः

वीर्यरक्षा से बड़े लाभ होते हैं। आज देश में दरिद्रता रोगशोक आदि फैले हुए हैं। इनका कारण लोगों का वीर्यशाली न होना है। वीर्य का नाश इस तरह किया जाता है जैसे कोई कूड़ा करकट हो। वीर्य की शक्ति का अन्दाजा न लगाकर लोगों ने उसको नष्ट करने और विषय भोग भोगने में आनन्द मान रखा है जब अधिक संतानें हो जाती हैं तब अपनी जिम्मेवारियों से घबराकर दुःखी होते हैं। बहुसंतति

से घबराते हैं मगर मैथुन नहीं छोड़ सकते। भारतवासियों के लिए यह बात बहुत ही विचारणीय है। भारत ने ब्रह्मचर्य का महत्व समझा हुआ है। इस देश में ऐसे महान ब्रह्मचारी हुए हैं जिन्होंने महान् शक्तियां प्राप्त करके जगत के समक्ष आदर्श उपस्थित किया है।

यह दुर्भाग्य की बात है कि इस देश के निवासी भी पाश्चिमात्य देशों की नकल करके संततिनिरोध के लिए कृतिम उपाय काम में लाने लगे हैं। यह घोर अन्याय है। जिस देश का आदर्श ही पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन करना हो उसके निवासी कृतिम उपायों से संततिनिरोध करें इससे बढ़ कर शर्मजनक बात और क्या हो सकती है। संततिनिरोध करने का प्रामाणिक उपाय ब्रह्मचर्य का पालन और वीर्य रक्षा ही है। वीर्य को व्यर्थ नष्ट करने के समान अन्य कोई अन्याय नहीं हो सकता।

आप विचार करेंगे तो मालूम होगा कि आप में जो शक्ति और साहस है वह वीर्य के प्रताप से ही है। यदि मनुष्य शरीर में वीर्य न रहे तो चलना फिरना उठना बैठना आदि सब बन्द हो जाय। आंशिक वीर्य नाश से भी मनुष्य ढीला हो जाता है, निःसत्त्व बन जाता है और उत्साह, स्फूर्ति, कर्तृत्व शक्ति आदि सब नष्ट हो जाते हैं। वीर्य रक्षा से उक्त गुण प्राप्त हो सकते हैं। जिस वीर्य के रक्षण से मनुष्य बाल सफेद हुए बिना, दांत गिरे बिना, आंख नाक और कान की शक्ति कमजोर हुए बिना सौ वर्ष तक जिन्दा रह सकता है उस

वीर्य शक्ति को नीच कामों में क्षणिक सुख के लिए नष्ट कर डालना कितना हानिकर कार्य है। ब्रह्मचर्य से लोगों को प्रेम तो है मगर कोरीवातों के प्रेम से क्या काम चल सकता है। ब्रह्मचर्य सम्बन्धी सादे नियमों का पालन भी नहीं होता। इसी से सारी खरावी है।

चौथा भाव ब्रह्मचर्य है। भाव ब्रह्मचर्य के शास्त्रकारों ने दस नियम वताये हैं। ये दस नियम पूर्ण ब्रह्मचारी और मुनि के लिए हैं। अपूर्ण ब्रह्मचर्य के लिए भी ये दस नियम हैं जो विवाहित और अविवाहित, युवक और वृद्ध सव के लिए लाभ प्रद हैं। आप लोग भी इन नियमों पर विश्वास लाकर इनका पालन करिये। अपने शरीर की अन्य वीमारियों की दवा की होगी। किन्तु अब्रह्मचर्य की दवा न की होगी। ये दस नियम वीर्य रक्षा करने की दवा है, इस दवा का सेवन कर के देखिये कि कितना लाभ होता है।

पहला नियम भावना है। भावना का वड़ा प्रभाव होता है, माता पिता को यह भावना रखनी चाहिए कि मेरी संतान वीर्यवान और जग कल्याणकारी हो। आप लोगों को अनेक प्रकार के स्वप्न आते होंगे। सब भिन्न भिन्न स्वप्न क्यों आते हैं भावना के भिन्न होने के कारण स्वप्न भी भिन्न २ आते हैं। जिसकी जैसी भावना होती है उसे स्वप्न भी वैसा ही आता है। इसी प्रकार संतान के विषय में माता पिता के जैसे विचार होंगे संतान के विचार भी वैसे ही होंगे। जैसे भावना से स्वप्न का निर्माण होता है वैसे ही माता पिता की भावना से संतान के

भावों पर गहरा असर पड़ता है। यह प्रभाव गर्भावस्था से ही आरंभ हो जाता है। अच्छे या बुरे स्वप्न हम स्वयं बुलाते हैं। अतः संतान और अपने विषय में ब्रह्मचर्य की भावना रखनी चाहिए।

दूसरा नियम है खुराक का विचार। जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। कई लोग समझते हैं कि जिसके खाने से आनन्द आवे वही भोजन है। किन्तु यह विचार भूल भरा है ब्रह्मचारी और अब्रह्मचारी के भोजन में बड़ा अन्तर है। गीता में रजोगुणी तमोगुणी और सतोगुणी भोजन अलग अलग बताये गये हैं। वैदिक ग्रंथों में भी ब्रह्मचारी का भोजन भिन्न प्रकार का बताया गया है। किन्तु आज अधिकांश लोग जबान के वशी भूत होकर खाने के गुलाम बने हुए हैं। जो अपनी जीभ पर भी काबू नहीं रख सकता वह लंगोट पर काबू कैसे रखेगा। विद्या पढ़ने और शास्त्र सुनने का फल यह है कि अपनी इन्द्रियों पर काबू रखना। इन्द्रियों में भी रसना इन्द्रिय सब में मुख्य है जिस पर काबू रखना सर्व प्रथम कार्य है। इस रसना इन्द्रिय को पुष्ट करने से अन्य चारों इन्द्रियां पुष्ट होती हैं। इसको भूखा रखने से अन्य इन्द्रियों का बल भी क्षीण हो जाता है। भोजन का असर हमारे शरीर और मन पर कितना पड़ता है यह स्वतंत्र विषय है जिस पर लम्बा विवेचन आवश्यक है। अभी तो मैं इतना ही कहता हूं कि हमारे मन को बिगाड़ने और इन्द्रियों में उत्तेजना पैदा करने में यह प्रधान कारण है। अधिक शक्कर और मिर्च मसाले दार पदार्थों का ब्रह्मचर्य के खंडन में तत्काल असर होता है।

आज कल खाने पीने के सम्बन्ध में लोग भान भूले हुए हैं। ऐसा मालूम देता है मानों पढ़ाई का फल बे भान बनने में ही हो। चाय पीने का शौक आजकल इतना बढ़ गया है कि कुछ कहा नहीं जाता। कोई रोगी दवा के रूप से इसका उपयोग करे यह बात जुदी है। मगर माताएं प्रति दिन अपने बच्चों को चाय पिलावें और माने कि इससे बच्चों में तेजी और स्फूर्ति आती है, कितनी गलत धारणा है। चाय से तेजी और स्फूर्ति आती है यह बात किसी से पूछी है या स्वयं ही धारणा बांध ली है? आज चाय ने लोगों पर किस प्रकार आधिपत्य जमा रखा है, इस पर एक कवि कहता है।

चाय तारी चाहना, ज्यां त्यां विशेषे वधी पड़ी।
मोंह फाड़ता मुंह वाटती, तुम्फ माटे तलखे जीभड़ी॥
दांतन कर्यों के ना कर्यो, पर रांड तूं तो झट खड़ी।
तारा विना हिन्दुस्तान मां, एक जोयो मलतो नथी॥
अटकी बस नहीं तुं एटले, जहां शाक लेवा जन जता।
बाजार मां सुख शांति गृह मां, देखी तुझने पेसतां॥
बकबाद पिण थारो थतो, वलि जगवुं तुझ जाप थी।
नाशी गयो दुध दही, पापिनी तुम्फ पाप थी॥
मिजमान भी आव्या घरे, सत्कार तारा थी थतो।
उत्सव अने मजलिस विषे, वैभव न तुझ विन छाजतो॥
नाटक विषे चेटक विषे, मुसाफरी मां तुं खडी।
खूब रग फड़फड़ाती, कलेजो बाली ने करी ठीकरी॥
आचार भ्रष्ट कर्या बावली, जागपूं तुझ नाम थी।
करी मंद जठराग्नि ने, धातू ने बाली नाखती॥

चूडेल चूसे रक्त निशिदिन, रोजना रोगी कर्या।
आश्चर्य वैद्य हकीम डाक्टर, सर्व ने तें वश कर्या॥
जे न्याय ना देनार, न्यायाधीश पण तुझ ने वर्या।
फर्याद तारी क्यां करूं, सर्व ने तें वश कर्या॥
मूलज भूल्यो तने हूं लेतां, तूं बेचारी शुं करे।
आंखों लखी जन अन्ध थइने, लई दीप कूवे पड़े॥
सर्प छे छेड्यो सुतेलो, तेने करड़तां शु वार हे।
छेड़ी तने वलगी पड़ी, तुज दोष नहीं छे लिगार हे॥

घोर अंधेरा छाया हुवा है। जिससे लोग अंधा धुंधी की ओर जा रहे हैं। जिसको नागिन कहा जाता है उसको यदि आप माला मानकर गले में धारण कर लें या घर में रख लें, तो क्या यह नहीं कहा जायगा कि आप अंधेरे में हैं। आप कहेंगे नागिन को घर में कौन स्थान देगा? किन्तु मैं पूछता हूं चाय क्या नागिन से कम है? जो समय प्रातःकाल का ईश्वर भजन करने का है उस वक्त इस गरमागरम नागिन को पेट में डाल लेते हैं। किसी अच्छे डाक्टर से पूछिये कि चाय पीने से क्या हानियां होती हैं। चाय से धातु क्षीण होता है। इंद्रियों में झूठी उत्तेजना पैदा होती है। इसकी फरियाद की जावे तो किसके सामने की जावे। बड़े २ जज और डाक्टर भी इसके काबू हैं। वे इसकी बुराई कैसे बतावें। महात्मा गांधीजी ने इसके अवगुणों पर अच्छा प्रकाश डाला है। मैं भी आप लोगों से कहता हूं कि यह अच्छी चीज नहीं है। ब्रह्मचर्य की घातक है। अतः इसका त्याग करने में ही श्रेय है।

शराब पीने के शौकीन लोग शराब के गुणों का वर्णन करने से भी बाज नहीं आते। सभी धर्म शास्त्रों में शराब पीने का निषेध है फिर भी इसके शौकीन इसका नाम लाल शर्बत रखकर पी जाते हैं। साथ में यह कहने से भी नहीं चूकते कि पुराने लोग तो ढच्चर हैं, वे इन नवीन आनन्द दायी पेय के गुणों को क्या समझ सकते हैं। चाय शराब बीड़ी तमाखू आदि चीजें वीर्य नाशक हैं। वीर्य को पतला बना देती हैं। जिससे पुरुष सत्वहीन तेजहीन होकर कठिनाई से जीवन के भार को वहन करता है।

अतः आहार का विचार रखना ब्रह्मचारी के लिए परम आवश्यक है। कौनसी वस्तु शरीर मन और बुद्धि पर क्या असर करती है यह जानकर ही उसका उपयोग करना चाहिए। भोजन स्वाद के लिए न करके शरीर और मन को स्वस्थ पुष्ट और विकारहीन बनाने के उद्देश्य से करना चाहिए। कोरी चर्बी बढ़ा लेना स्वास्थ्य का चिन्ह नहीं है। मन मजबूत बनाना और विकारों को काबू में रख सकने की सामर्थ्य प्राप्त करना जीवन का ध्येय होना चाहिए।

बालक और युवक का खाना भिन्न २ है। इसी प्रकार सधवा और विधवा की खुराक भी भिन्न होनी चाहिए। विधवाओं को अपने शील की रक्षा के लिए विकृतिहीन भोजन करना चाहिए। तथा कुमारीकाओं को भी सात्विक भोजन लाभप्रद होता है। खान पान का विचार न रखने से तथा भावना अशुद्ध रहने से लड़कियां अपरिपक्व उम्र में ही ऋतु-

मती हो जाती हैं। उनकी संतान भी कमजोर होती है। प्रसूति-काल में स्त्रियों की अधिक मृत्यु संख्या भी इसी बात की ओर संकेत करती है।

तीसरा पोषाक पर ध्यान रखना। पोषाक का भावना के साथ बड़ा सम्बन्ध है। यदि पोषाक चटकीली होगी तो हमारे कारण दूसरों की भावनाओं में विकार आ सकता है तथा कभी हमारा भी पतन हो सकता है। हम साधु लोग ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं अतः हमें पोषाक-वेष पर बहुत ध्यान रखना पड़ता है। यदि हम लोग रंगीन वस्त्र पहन लें तो आप लोग उपालम्भ देने लगेंगे और कहेंगे कि साधुओं को रंगीन वस्त्र पहनना अनुचित है। जिस तरह साधुओं के वस्त्रों पर आप ध्यान देते हैं उसी तरह अपने वस्त्रों पर भी ध्यान क्यों नहीं लगाते। कई लोग कहते हैं, वस्त्रों में क्या है। चाहे खादी पहने चाहे विलायती। वस्त्र पर क्या राग द्वेष रखना। कई यह भी कहते हैं कि मन शुद्ध रखना चाहिए, वस्त्रों में क्या है। किन्तु वे लोग यह नहीं सोचते कि भड़कीली पोषाक चित्त में खराबी पैदा करती है। लज्जा ढांकने के लिए सादी पोषाक से काम चल सकता है तो चर्बी युक्त फेन्सी वस्त्र पहनने में क्या विशेषता है। वस्त्र पर राग द्वेष रखने का प्रश्न नहीं है। खादी की उत्पत्ति अल्पारंभ से है जबकि विलायती वस्त्र की महारम्भ से।

इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि खादी की उत्पत्ति कब से है और मिलवस्त्रों की कब से। खादी बनाने की

कला भगवान ऋषभ देव ने बताई है। मिलों की उत्पत्ति आधुनिक है। क्या ऋषभ देव मिल विज्ञान से अनभिज्ञ थे जो हाथ से खादी बनाने की कला बताई। नहीं, वे इस कला को जानते थे किन्तु मानव समाज का इस में हित न देख कर इसे नहीं बताया। जनता का जीवन भी निभ जाय और किसी प्रकार की हानि भी न हो ऐसी कला उन्होंने बताई थी। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति में कहा है कि—

जणाहियट्ठयाए

अर्थात् जनता के हित के लिए कलायें बताई गई हैं। मतलब यह है कि पोषाक पर ध्यान देना ब्रह्मचारी के लिए अत्यावश्यक है जो लोग फैशनेबल वस्त्र पहनते हैं वे एक बार सादे वस्त्र पहनकर अनुभव करें कि जीवन पर कैसा असर होता है। कई लोग तर्क करते हैं कि खादी पहनने वाले भी तो लुच्चे लफंगे होते हैं। इस का उत्तर इतना ही है कि साधु--वेष धारियों में लुच्चे लफंगे नहीं होते ? इस तरह की बातें तो चलती रहती हैं। इससे सादी पोषाक का महत्व घट नहीं सकता। कहावत है कि फैशन की फांसी और सादगी आबादगी

वीर्यनाश का एक कारण स्त्री पुरुषों का एक ही मकान या एक ही बिस्तर पर सोना भी है। एक मकान या बिस्तर पर सोने से वीर्य स्थिर नहीं रह सकता। मन में कमजोरी आते ही पतन हो जाता है। शास्त्रों में जहां भी स्त्री और पुरुषों के सोने का वर्णन आया है वहां भिन्न भिन्न शयना-

गारों का जिक्र है। उनका शारीरिक सम्बन्ध अवसर पर ही होता था। विना अवसर के नहीं होता था इसीलिए उनकी संताने भी शक्तिशाली होती थी।

निकम्मा रहना भी वीर्य नाश का एक कारण है। जो लोग शरीर और मन को काम में लगाये नहीं रहते उनका वीर्य स्थिर नहीं रह सकता। शरीर और मन को काम में लगाये रहने से व्यर्थ के विचार नहीं आसकते। विना काम के शरीर और दिमाग में शैतान का वास माना जाता है रात को देरी से सोना और सूर्योदय के वाद तक सोते रहने से भी वीर्य नाश को मदद मिलती है। अश्लील साहित्य पढ़ना और अश्लील चित्र देखना भी ब्रह्मचारी के लिए घातक है। आज कल देखा जाता है कि अश्लीलतापूर्ण साहित्य—उपन्यास और कथांए छात्र छात्राएं बड़ शौक से पढ़ते हैं। वहने भी ऐसी पुस्तकें पढ़ती हैं उनको सतियों के चरित्र मिलते ही नहीं। मिल गये तो पढ़ने का चाव ही नहीं है। गन्दा साहित्य पढ़ने से गंदे विचार वनेगें। और गंदे विचार होने से येन केन प्रकारेण वीर्य नाश हुए विना नहीं रह सकता।

नाटक सिनेमा देखना और शृङ्गार रस पूर्ण गाने सुनना भी वीर्य रक्षा में वाधक है। वर्तमान युग में सीनेमाओं की धूम वहुत बढ़ी हुई है। मिलों या कारखानों के पास ही सीनेमाघर होते हैं जिससे बेचारे गरीबों का धन और धर्म दोनों का हरण हो जाता है। सीनेमाओं में स्त्री पुरुषों का हाव भाव आदि देखकर कौन व्यक्ति अपने को कावू में रख

सकता है। कभी कोई कहे कि सीनेमा नाटकों में महात्माओं रामचन्द्र हरिश्चंद्र और भक्त तुकाराम जैसों के चरित्र भी दिखाये जाते हैं अतः एकान्त रूप से इनका निषेध करना कहां तक उचित गिना जा सकता है। इसका समाधान यह है कि यदि किसी बाग में दो चार वृक्ष अच्छे हों और बाकी सब जहरीले हों तो क्या आप उस बाग में हवा खाने जायंगे? बन्धुओ! गुणों की अपेक्षा दुर्गुण जल्दी चिपक जाते हैं। अतः सीनेमा संसार से बचाये रखना ही ब्रह्मचारी के लिए लाभ की बात है। ग्रामोफोन की अश्लील चूड़ियां बजाकर सुनना भी मन पर बुरा असर पैदा करता है।

स्वप्नदोष से भी वीर्यनाश होता है। कई लोग कहते हैं कि ब्रह्मचर्य का पालन करने से स्वप्नदोष होकर वीर्य-नाश हो जाता है। किन्तु यह कथन ठीक नहीं है। ब्रह्मचर्य का पालन करने से कभी वीर्य नाश नहीं हो सकता। मनमें दूषित विचार या खान पान आदि के दोष से स्वप्नदोष होता है। स्वप्न दोष होने का कारण ढूंढ़ निकालना चाहिए और उसे दूर करने का उपाय करना चाहिये। भावना में खराबी आये बिना स्वप्नदोष होना ठीक नहीं जँचता। आहार की विकृति से भी स्वप्नदोष संभव है। अतः किसी के कहने में न आना चाहिए कि ब्रह्मचर्य पालन से स्वप्नदोष हो जाता है। आप सोते हुए हों और आपकी गफलत में कोई आपके खीसे में से रुपये या रत्न निकाल ले जावे तो क्या आप जागते हुए भी किसी को रत्न ले जाने देंगे। ऐसा आप कदापि न होने देंगे। इसी तरह सुप्तावस्था में यदि आपका वीर्यरूपी रत्न चला जाता है तो इसका अर्थ यह कदापि नहीं हो सकता

कि आप जाग्रतावस्था में भी जान बूझकर वीर्य नाश करें।

ऊपर बताये हुए कारणों को रोकते हुए आत्म संयम रखना वीर्यरक्षा का अमोघ उपाय है। जो बात आपके काबू में न आवे, परमात्मा की प्रार्थना करते रहने से वह भी वश में हो जावेगी। उस अजर अमर अविनाशी प्रभु की शरण में अपने को छोड़ देने से हमारी रक्षा सुनिश्चित है।

अब मैं इन्ही सब बातों का सार एक कथा द्वारा आपके सामने रखता हूं। आजकल विवाह करने के सम्बन्ध में युवकों और वृद्धों की विचारधारा में खींचातानी चल रही है। युवक कहते हैं, कन्या को हर किसी जाति में शादी करने का अधिकार है। जाति बन्धारण ने इसमें विघ्न डाल रखा है। वृद्ध कहते हैं, युवक स्वच्छन्द हो गये हैं। पुरानी प्रथाओं को मटियामेट करके सारी जाति व्यवस्था को नष्ट करने पर तुले हुए हैं। अपना जीवन साथी चुनने का लड़के लड़कियों को कोई अधिकार नहीं है। यह तो हम वृद्धों का अधिकार है। हम जिनके साथ शादी कर दें उसी के साथ जीवन पर्यन्त रहना होगा। इस प्राचीन कथा से युवक वृद्ध विचार धारा का वैषम्य भी मिट सकता है।

यह कथा महा ब्रह्मचारी भीष्म की है। भीष्म का पहला नाम गंगकुमार था। फिर देवव्रत नाम हुआ। और ब्रह्मचर्य की भीष्म भयंकर प्रतिज्ञा करनेके कारण अखीरमें भीष्म नाम प्रसिद्ध हुआ। एक बार किसी ने भीष्म से कहा कि आपके विवाह न करने से भारत को बड़ी हानि हुई है। यदि आप विवाह करते तो आपके लड़के भी आप ही जैसे पराक्रमी और वीर्य-

वान् होते। भीष्म ने उत्तर दिया कि यदि मैं विवाह करता तो मेरे पुत्र वीर्यवान होते या कैसे, यह तो अनिश्चित है। क्योंकि क्षीर सागरमें सब क्षीर ही नहीं होता, विष भी होता है। किन्तु मेरे ब्रह्मचारी रहने से मुझे आदर्श मानकर वर्तमान और भविष्य में भी कितने व्यक्ति अपना जीवन सुधारकर स्वपर का कल्याण करेंगे।

भीष्म का विचार पहले ब्रह्मचारी रहने का न था। किन्तु अपने पिता की इच्छा पूरी करने के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत पालन करने की महान् प्रतिज्ञा ग्रहण की थी। इससे इस कथा से यह भी ज्ञात होगा कि पुत्र का पिता के लिए क्या कर्तव्य है। तथा पिता का पुत्रके लिए भी। सत्यवती जिसे मत्स्यगन्धा और योजनगंधा भी कहते हैं, देखकर राजा शान्तनु विमोहित हो गया। उससे वातचीत करने के पश्चात् उसे सर्वोत्कृष्ट जानकर अपनी रानी बनाने का निश्चय कर लिया। निश्चय तो कर लिया मगर राजा विचार करने लगा कि मेरी यह इच्छा पूरी कैसे हो। सत्यवती से यह जानकर कि वह सुदास की कन्या है, राजा उसकी याचना करने के लिए उसके घर पर उसके पास गया। शान्तनु राजा था, चाहता तो हुक्म देकर सुदास को बुलवा सकता था। मगर वह उसका हृदय परिवर्तन करके उसकी कन्या ग्रहण करना चाहता था। अनीतिपूर्वक जबरन लेना नहीं चाहता था। हृदय का काम धर्म का विचार करना है। राजा स्वयं याचक बना और सुदास को दाता बनाया।

अब हमें यह देखना है कि कन्या के पिता का कन्या के प्रति क्या कर्तव्य है सौदास यह सोचने के लिए स्वतंत्र था कि यदि मैं अपनी कन्या राजा को दूंगा तो मैं वैभवशाली हो जाऊँगा। और मेरा मान सन्मान बढ़ जायगा। किन्तु उसने अपने सुख को ध्यान में रखकर इस बात पर विचार नहीं किया मगर अपनी कन्या के भविष्य को मद्दे नजर रखकर राजा से कह दिया कि मैं अपनी कन्या आपको नहीं दे सकता। आपका पुत्र गंगकुमार बड़ा पराक्रमी और वीर है राज्य का अधिकारी वह होगा। मेरी कन्या और उसके पुत्र दर दर के भिखारी रह जायंगे

सौदास का उत्तर सुनकर राजा विचार करने लगा कि यद्यपि यह कन्या मुझे अत्यन्त प्रिय लगती है फिर भी इसके लिए अपने पुत्र गंगकुमार के अधिकार पर कुठाराघात कैसे कर सकता हूँ। मैं अपनी इच्छा को रोकूंगा मगर गंगकुमार के हक को नष्ट न करूंगा। एक तरफ तो राजा को इस बात का अफसोस था कि नाहक मैंने सौदास से उसकी कन्या की याचना की और दूसरी तरफ सत्यवती के रूप लावण्य की याद से दुर्बल होता जाता था। उसका शरीर हाडपिंजर हो गया। मंत्रियों से अपने पिता की दुर्बलता का समाचार जान कर गंगकुमार मन्त्रियों के साथ सौदास के घर गये।

गंगकुमार सौदास से कहने लगे कि तुम बड़े भाग्य-शाली हो जो पिताजी तुम्हारी कन्या चाहते हैं। वे तुम्हारे जमाई बनना चाहते हैं। तुमने इस सम्बन्ध से इन्कार

ॐ

इच्छा आकाश के समान अनन्त है

अरहनाथ अवीनाशी, शिवसुख लीधो,
विमल विज्ञान विलासी साहव सीधो ॥ १ ॥
तू चेतन भज अरहनाथ, ते प्रभु त्रिभुवन राया,
तात 'सुदर्शन' 'देवी' माता, तेनो नन्द कहाय ॥ २ ॥

प्रार्थना

यह अठारहवें तीर्थङ्कर भगवान् अरहनाथ की प्रार्थना है आत्मा परमात्मा की प्रार्थना किस प्रकार करता है, यह देखना है प्रार्थना दो प्रकार की होती है। एक सविकल्प दूसरी निर्विकल्प। आत्मा को निर्विकल्पक प्रार्थना ही करनी चाहिए। किन्तु एक दम निर्विकल्प प्रार्थना तक पहुंचना कठिन है। इसलिए निर्विकल्प प्रार्थना में जाने के लिए सविकल्प प्रार्थना का अवलम्बन किया जाता है। इस भजन में दोनों प्रकार की प्रार्थना की गई है। सगुण और निर्गुण अथवा साकार और

निराकार, शरीर धारी अर्हन्त और अशरीरी सिद्ध दोनों की प्रार्थना की गई है।

तात सुदर्शन देवी माता तेनो नंद कहाय

जिनके पिता सुदर्शन है और माता देवी है, उन शरीर धारी अठारहवें तीर्थंकर भगवान् अरहनाथ की पहले स्तुति की गई है। फिर कहा गया है—

अलख अरुप अखन्डित अविचल अगम अगोचर आप।
निर्विकल्प निःकलंक निरंजन अद्भुत ज्योति अमाप॥

जिसका स्वरुप देखा नहीं जा सकता, जिसका भौतिक रुप नहीं है, जो अखंडित है, जिसके टुकड़े नहीं किए जा सकते, जो चलायमान नहीं होता, जो मन और बुद्धि का विषय नहीं हो सकता, जिसके सम्बन्ध में कोई विकल्प नहीं किया जा सकता, जो निष्कलंक है—कर्मरुप रजमैल से रहित है, जो निराकार होता हुआ भी अद्भुत ज्योति—ज्ञान ज्योति धारण करता है और जिसका माप नहीं हो सकता उस परमात्मा की प्रार्थना करता हूँ अर्थात् शरीर धारी और अशरीर धारी दोनों प्रकार के परमात्मा की प्रार्थना की गई है।

शंका—शरीर धारी परमात्मा--अर्हन्तों के न होने पर यदि उन की मूर्त्ति बनाकर, उसकी सहायता से आगे बढ़ा जावे तो क्या हर्ज है? समाधान--इस तरह करने से आप अधिक गड़ बड़ में पड़ जायंगे। निश्चय नय से आत्मा और

शरीर भिन्न २ है। एक दूसरे का कोई सम्बन्ध नहीं है। शरीर जड़ है, आत्मा चैतन्य हैं। फिर भी मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण आत्मा शरीर को अपना मानता है। आत्मा को शरीर रूप होने का अध्यास हो रहा है। यह अध्यास बढ़ाना ठीक है या घटाना ? यदि शरीर से आत्मा का जो अभेद बोध हो रहा है उसे दूर करना है तब तो उसे यही विचार करना पड़ेगा कि मैं शुद्ध चैतन्य हूं, शरीर से मेरा कोई संबंध नहीं है, मैं निर्विकल्प हूं, शरीर से निकलना चाहता हूं। मुझे जो अभेदाध्यास हो रहा है; वह झूठा है। जब शरीर के अध्यास से भी आत्मा अलग होना चाहता है तब मूर्ति में अपने को फंसाकर अधिक उलझन में पड़ना कहां तक उचित हैं ? यह तो शरीराध्यास से निकलने के बदले और अधिक फंसना हुआ। यह तो द्राविड़प्राणायाम हुआ। शरीर धारी अर्हंतों की भक्ति औरगुण-गान करना दूसरी बात हैं। उन में गुण विद्यमान हैं। मूर्ति में गुण नहीं होते।

जब आत्मा को शरीर में अभेदाध्यास हो जाता है तब 'मैं शरीर हूं' ऐसा मानने लगता है। अर्जुन को भी ऐसा अध्यास हो गया था। तब श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश दिया—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा–न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥

नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र त्यागकर नवीन वस्त्र धारण करते हैं, उसी प्रकार पुराने शरीर को छोड़कर आत्मा नवीन शरीर को धारण करता है। इस आत्मा को शस्त्र छेद नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकता। श्रीकृष्ण ने अर्जुन को जो वात समझाई है वह हमारे आपके लिए भी है। शरीर नाशवान् है। आत्मा अविनाशी है। इस प्रकार आत्मा को सविकल्प से निर्विकल्प में पहुंचना है न कि और विकल्प में फंसना है।

यदि सविकल्प प्रार्थना करनी है तो जैसा कि पहले बताया गया है, माता पिता से उत्पन्न अठारहवें तीर्थंकर तेरहवें गुणस्थान में वर्तमान अर्हंत भगवान् की करनी चाहिए। और यदि निर्विकल्प प्रार्थना करनी है तो सिद्ध भगवान की करिये। अरहनाथ स्वामी हुए तो शरीर में ही किन्तु अंत में शरीर का अध्यास छोड़कर शरीर से निकलकर सिद्ध बुद्ध हुए हैं।

शास्त्र :—

सविकल्पक प्रार्थना से निर्विकल्पक स्थिति में कैसे पहुंचना चाहिए यही वात शास्त्र के द्वारा बताता हूं। श्रेणिक राजा सोचता है कि मैं दीन, अनाथ या गरीव नहीं हूं फिर इन मुनि ने मुझे अनाथ क्यों कहा। राजा को वास्तविकता का ज्ञान न होने से मन में असुझा रहा है। जब तक ज्ञान नहीं होता तव तक आत्मा भ्रम जाल में पड़कर मुरझाता

यों किया। सौदास ने उत्तर दिया कि राजकुमार! इस संबंध में तुम्हीं बाधक हो। यदि तुम यह प्रतिज्ञा करलो कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य का अधिकारी होगा तो मुझे अपनी कन्या राजा के साथ व्याहने में कोई आपत्ति नहीं है।

सौदास का कथन सुनकर गंगकुमार विचार करने लगे कि आज यज्ञ का समय है। पितृभक्ति की परीक्षा है। लोग आग में घी डालकर होम करने को यज्ञ समझते हैं किन्तु यज्ञ क्या है इसके लिए गीता में कहा है:—

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुव्हति।
शब्दादिन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुव्हति॥
सर्वाणीन्द्रिय कर्माणि प्राणकर्माणि चापरे।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुव्हति ज्ञानदीपिते॥

पांचों इन्द्रियों और इनके विषयों पर काबू रखना ही वस्तुतः यज्ञ है। गंगकुमार अपने पिता के सुख के खातिर श्रोत्रादि इन्द्रियों के विषयसुखों को अग्नि में होम करता है। और यह सुनने में आनन्द मानता है कि सत्यवती का पुत्र युवराज होगा। गंगकुमार विचार करता है कि हे आंखों! तुम राजती पोशाक देखकर आनन्द मानने वाली थी किन्तु इस इच्छा को अब यज्ञ में होमकर भाई को राजा देखने में आनन्द मानना होगा। हे जीभ! अभी तक तू विविध व्यंजनों के आस्वाद में तल्लीन थी किन्तु अब तुझे पिता के सुख के खातिर यज्ञ में होम दूंगा। अर्थात् तेरे विषय को अब जीतना

होगा। हे मस्तक! अभी तक तू ऊंचा रहा है किन्तु अब पिता के सुख के लिए सत्यवती के पुत्र के सामने झुकना होगा। और उसे राजा मानना होगा। उस पर चँवर उड़ाने होंगे।

आग में घृत डालकर यज्ञ करनेवाले बहुत मिलें किन्तु ऐसा यज्ञ करनेवाले विरले ही पुरुष मिलेंगे।

गंगकुमार का यह आदर्श त्याग युवकों के लिए अनुकरणीय है। देश धर्म और माता पिता के लिए इतना त्याग करने वाले युवकों की बात कौन न मानेगा? गंगकुमार ने अपना पितृ कर्तव्य निभाया। उधर शान्तनु ने भी अपनी इच्छा का दमन करके पुत्र के अधिकार को आघात पहुंचाना उचित न समझा। अगर पिता पुत्र इस तरह एक दूसरे का हक देखते रहें तो कोई गड़बड़ नहीं हो सकती। युवक और वृद्ध एक दूसरे की सुविधा का खयाल रखते हुए बर्ताव करने लगें तो कितना सुखमय जीवन व्यतीत हो।

गंगकुमार ने सौदास से कहा कि मैंने पिता के हित के लिए सब कुछ त्याग करने का निश्चय कर लिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने पिता का राज्य ग्रहण न करूंगा। तुम्हारी लड़की का लड़का राज्य का अधिकारी होगा।

यह बात सुन कर सौदास कहने लगा–हे कुमार! तुम वीर हो। तुम्हारी प्रतिज्ञा वीरोचित है। ऐसी प्रतिज्ञा साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। किन्तु मैं भूलता हूं। आपका पुत्र

गी तो आप ही के समान पराक्रमी होगा। वह कब मेरी लड़की के लड़के को राज्य करने देगा। वह कहेगा मेरे पिता ने राज्य त्याग दिया तो क्या हुआ। राज्य का अधिकारी तो मैं हूं। इस तरह मेरा दौहित्र राज्य से वंचित हो जायगा। अतः मैं अपनी पुत्री आप के पिता को नहीं दे सकता।

जो लोग रुपए लेकर अपनी कन्याओं को बेच देते हैं, उन्हे सौदास के वर्ताव पर विचार करना चाहिए। सौदास जाति से कोली होकर भी अपनी कन्या के हक का इतना ख्याल रखता है। और उच्च जाति में उत्पन्न होने वाले लोग रुपयों के लोभ में आकर अपनी कन्याओं को बुड्ढों के साथ ब्याह देते हैं।

सौदास के ऐसा कहने पर गंगकुमार ने कहा—तुम ठीक कहते हो सौदास। मगर यदि मैं विवाह न करूं तो संतान कहां से होगी। मैं देव गुरू और धर्म को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं ता उम्र विवाह न करूंगा। जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

गंगकुमार ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम ग्रहण कर लिया। किन्तु आज इसके विपरीत नैमित्तिक लग्न हुए जाते हैं। युरुप में तो कई लोगों के यह ख्याल हैं कि शादी करके बन्धन में क्यों फंसा जाय। क्या ही अच्छा होता यदि यह कथन ब्रह्मचर्य पालन के साथ होता। किन्तु ऐसा कहने वाले ब्रह्मचर्य का भी पालन नहीं करना चाहते और

होगा। हे मस्तक ! अभी तक तू ऊंचा रहा है किन्तु अब पिता के सुख के लिए सत्यवती के पुत्र के सामने झुकना होगा। और उसे राजा मानना होगा। उस पर चँवर उड़ाने होंगे।

आग में घृत डालकर यज्ञ करनेवाले वहुत मिलेंगे किन्तु ऐसा यज्ञ करनेवाले विरले ही पुरुष मिलेंगे।

गंगकुमार का यह आदर्श त्याग युवकों के लिए अनुकरणीय है। देश धर्म और माता पिता के लिए इतना त्याग करने वाले युवकों की बात कौन न मानेगा ? गंगकुमार ने अपना पितृ कर्तव्य निभाया। उधर शान्तनु ने भी अपनी इच्छा का दमन करके पुत्र के अधिकार को आघात पहुंचाना उचित न समझा। अगर पिता पुत्र इस तरह एक दूसरे का हक देखते रहें तो कोई गड़वड़ नहीं हो सकती। युवक और वृद्ध एक दूसरे की सुविधा का खयाल रखते हुए वर्ताव करने लगें तो कितना सुखमय जीवन व्यतीत हो।

गंगकुमार ने सौदास से कहा कि मैंने पिता के हित के लिए सब कुछ त्याग करने का निश्चय कर लिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि अपने पिता का राज्य ग्रहण न करूंगा। तुम्हारी लड़की का लड़का राज्य का अधिकारी होगा।

यह वात सुन कर सौदास कहने लगा—हे कुमार ! तुम वीर हो। तुम्हारी प्रतिज्ञा वीरोचित है। ऐसी प्रतिज्ञा साधारण व्यक्ति नहीं कर सकता। किन्तु मैं भूलता हूं। आपका पुत्र

भी तो आप ही के समान पराक्रमी होगा। वह कब मेरी लड़की के लड़के को राज्य करने देगा। वह कहेगा मेरे पिता ने राज्य त्याग दिया तो क्या हुआ। राज्य का अधिकारी तो मैं हूं। इस तरह मेरा दौहित्र राज्य से वंचित हो जायगा। अतः मैं अपनी पुत्री आप के पिता को नहीं दे सकता।

जो लोग रुपए लेकर अपनी कन्याओं को बेच देते हैं, उन्हे सौदास के वर्ताव पर विचार करना चाहिए। सौदास जाति से कोली होकर भी अपनी कन्या के हक का इतना ख्याल रखता है। और उच्च जाति में उत्पन्न होने वाले लोग रुपयों के लोभ में आकर अपनी कन्याओं को बुड्ढों के साथ ब्याह देते हैं।

सौदास के ऐसा कहने पर गंगकुमार ने कहा—तुम ठीक कहते हो सौदास। मगर यदि मैं विवाह न करूं तो संतान कहां से होगी। मैं देव गुरू और धर्म को साक्षी रख कर प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं ता उम्र विवाह न करूंगा। जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करूंगा।

गंगकुमार ने आजीवन ब्रह्मचर्य पालन करने का नियम ग्रहण कर लिया। किन्तु आज इसके विपरीत नैमित्तिक लग्न किए जाते हैं। युरुप में तो कई लोगों के यह ख्याल हैं कि शादी करके वन्धन में क्यों फंसा जाय। क्या ही अच्छा होता यदि यह कथन ब्रह्मचर्य पालन के साथ होता। किन्तु ऐसा कहने वाले ब्रह्मचर्य का भी पालन नहीं करना चाहते और

बन्धन में भी फंसना नहीं चाहते। छूटे घोड़े रहना चाहते है ऐसे लोग दुराचार सेवन कर के समाज में अनीति की वृद्धि करते है।

गंगकुमार की यह दृढ़ प्रतिज्ञा सुनकर सौदास और सत्यवती आदि सब कांप उठे। भीषण प्रतिज्ञा करने के कारण ही भीष्म नाम चालु हुआ। अंत में भीष्म सत्यवती को अपने पिता के पास ले गये। सत्यवती का शांतनु के साथ विवाह हुआ। भीष्म आजीवन ब्रह्मचारी रहे। विवाह न करने पर भी ब्रह्मचर्य के कारण जगत् पितामह कहलाये। आप लोग भी भीष्म पितामह के जीवन से शिक्षा लेकर ब्रह्मचर्य का पालन करिये। युवक और वृद्ध एक दूसरे का आदर करना सीखें और परस्पर प्रेम से रहें तो कल्याण है।

आशा है ब्रह्मचर्य के सम्बन्ध में मेरी बातें सुन कर आप लोग अपना जीवन उच्च बनाने का प्रयत्न करेंगे। इतना कह कर अपना भाषण समाप्त करता हूं।

२-८-३६

राजकोट

रहता है। यह भ्रम तभी मिट सकता है जब किसी ज्ञानी गुरु का संयोग मिलता है। अपूर्ण ज्ञानी को भ्रम होता ही है। जैसे अंधेरे में रस्सी को सांप, दूरीपर शीप को चांदि और ठूंठ को मनुष्य समझने का भ्रम होता है। किन्तु प्रकाश होने पर और निकट पहुंचने पर यह सारा भ्रम दूर हो जाता है। रस्सी तो रस्सी ही है, शीप भी शीप ही है और ठूंठ भी ठूंठ (स्थाणु) ही है किन्तु भ्रम के कारण इनको गलत समझा जाता है। भ्रम दूर होने पर सच्चाई सामने आ जाती है। श्रेणिक राजा के भ्रम को दूर करने के लिए मुनि कहते हैं:—

न तुमं जाणे अणाहस्स, अत्थं पुत्थं च पत्थिवा।
जहा अणाहो भवइ, सणाहो वा नराहिवा॥
सुणेह मे महाराय! अव्वाक्खित्तेण चेयसा।
जहा अणाही भवइ, जहा मेयं पवत्तियं॥

हे राजन्! तू अनाथ सनाथ का स्वरूप नहीं जानता है। मैं तुमको सुनाता हूं। एकाग्रचित्त से सुनो। मैंने तुमको अनाथ कहा, मगर उसका कारण नहीं बताया इसी से तुम व्याकुल हो रहे हो। और मुझ पर झूठ बोलने का आरोप लगा रहे हो।

जब तक किसी बात का कारण नहीं बताया जाता तब तक वह बात ठीक तरह से मगज में नहीं बैठ सकती। बहुत से लोग अपने बच्चों को अनेक प्रकार की विधिनिषेध पूर्वक आज्ञाएं प्रदान कर देते हैं किन्तु अमुक काम करने और न करने का कारण नहीं बताते जिससे बच्चे उसकी असलियत

को नहीं समझते और कभी कभी आज्ञा का उल्लंघन भी कर डालते हैं। अतः अपने शिष्यों या लड़कों को किसी भी बात की प्रवृत्ति या निवृत्ति की आज्ञा देने के साथ ही साथ उस कार्य का कारण भी बता देना चाहिए ताकि कारण समझकर शीघ्र प्रवृति करने लगें। मुनि ने राजा को अनाथ तो कह दिया मगर वह अनाथ क्यों है इसका कारण नहीं बताया। इसीलिए राजा के मन में अनेक संकल्प विकल्प पैदा हुए हैं। अब मुनि अनाथता का कारण बताने के लिए कहते हैं कि हे राजन्! एकाग्रता पूर्वक सुन।

प्रत्येक बात चित्त को एकाग्र बनाकर सुनी जावे तभी समझ में आ सकती है और लाभ हो सकता है। यदि सुनने में ध्यान न देकर चित्त कहीं अन्यत्र चला गया हो तो उससे पूरा लाभ नहीं हो सकता। चित्त की एकाग्रता हर काम के लिए आवश्यक है। चाहे व्यवहारिक कार्य हो चाहे आध्यात्मिक दोनों में एकाग्रता की जरूरत है। जिस काम को लेकर बैठे हैं, उसके सिवा किसी अन्य काम में चित्त को दौड़ा देना विक्षेप है।

आप लोग सामायिक करके बैठे हैं। सामायिक का मतलब है आत्मा में स्थित होना। अन्यत्र व्यायोग न करना। किन्तु आपका चित्त कहां है यह कौन जानता है? सामायिक भी करना और मन को खुला छोड़कर इधर उधर भटकने देना वैसा ही हुआ जैसा—

न खुदा ही मिला न विशाले सनम,
न इधर के रहे न उधर के सनम।

सामायिक लेकर बैठने पर भी यदि मन स्थान पर न रहे और इधर उधर भटकता रहे, तो उस समय के लिए उसे क्या कहा जाय, वह सामायिक कैसी होती है, उसके लिए एक बात सुनाता हूं।

एक सेठ की पुत्रवधू को दूसरों के मन की बात जानने का विशिष्ट ज्ञान हो गया था। एक दिन उसका श्वसुर सामायिक करके बैठा था। बाहर से एक आदमी आकर पूछने लगा कि सेठजी कहां हैं? सेठ ने उसकी आवाज सुन ली किन्तु सामायिक में होने से उत्तर नहीं दिया। पुत्रवधू ने उत्तर दिया कि सेठजी अभी मोचीवाड़े में गये हुए हैं। उस व्यक्ति को जरूरी काम था अतः दौड़ा हुआ मोचीवाड़े में पहुंचा। मोचीवाड़े में सेठजी को न पाकर वापस आकर पूछने लगा कि वहां तो नहीं हैं। कहां हैं सो बताओ। मुझे बहुत आवश्यक काम है। पुनः पुत्रवधू ने कहा, अब सेठजी पंसारी बाजार में गये हुए हैं। बहु की बात सुनकर वह आदमी पंसारी बाजार के लिए शीघ्रतापूर्वक चला गया। इतने में सामायिक पार कर सेठजी अपनी पुत्रवधू से पूछने लगे कि बेचारे उस आदमी को नाहक कष्ट देकर झूठ क्यों बोल रही हो। मैं घर में ही सामायिक करके बैठा था। उस आदमी को पहले मोचीवाड़े में भेजा फिर पंसारी बाजार में। इस प्रकार झूठ बोलने से तुम्हारी पैठ उठ जायगी। लोग तुम्हारी बात न मानेंगे।

श्वसुरजी की बात सुन कर पुत्र वधू कहने लगी। मैं

आज तक झूठ न बोली। आपने आज मुझ पर झूठ बोलने का दोषारोपण किया है मैं पूछती हूं--क्या आप सचमुच सामायिक में थे? आप का मन जूते पहनने के लिए मोचीवाड़े में नहीं था? और उसके बाद पंसारी बाजार में जिन्स खरीदने के लिए नहीं दौड़ रहा था? आप आत्म साक्षी से कहिये। वधू की बात सुन कर श्वसुर आश्चर्य में डूब गया। कहने लगा वस्तुतः मेरा मन उक्त दोनों स्थानों में चला गया था। मैं स्व उपयोग में न था। वहू तेरी बात सत्य है।

तब बहूने कहा—निश्चय नय से जिस व्यक्ति का उपयोग जहां होता है वह वहीं है ऐसा गिना जाता है। आपकी चित्तवृत्ति तो बाजार में थी, आपके शरीर का खोखामात्र यहां था। अतः निश्चय नय से आप बाजार में थे, व्यवहार नय से घर पर थे। कहिये--मैंने क्या झूठ कहा। अब आयन्दा आप सामायिक में मन को स्थिर रखने की कोशिश रखियेगा। तभी सामायिक सार्थक गिनी जायगी।

आप लोग भी सामायिक में बैठ कर मन में अनेक प्रकार के घाट घड़ने लगेंगे तो वह व्यवहारिक सामायिक गिनी जायगी। ऐसी सामायिक से इष्ट मनोरथ पूरा नहीं हो सकेगा आप कहेंगे—तो क्या सामायिक न किया करें? क्योंकि मन तो वायु के समान बड़ा चंचल है। प्रयत्न करने पर भी काबू में नहीं रहता। इसका समाधान इतना ही है कि यदि आप मन को इधर उधर जाने से रोकने में असमर्थ हैं तो उसे अशुभ प्रवृत्ति से हटाकर शुभ प्रवृत्ति में लगाने की कोशिश

करिये। यदि कभी बुराई की तरफ चला जावे तो पश्चात्ताप करते हुए भलाई की तरफ लाने का यत्न करें।

जब बालक के पैरों में जोर आ जाता है तब वह चलने लगता है। रोकने पर रुकता नहीं है। किन्तु उसके माता पिता जब उसे खतरे की तरफ जाते हुए देखते हैं, तब रोक लेते हैं और बच्चे को कहते हैं--चल किधर चलना चाहता है? उसकी अंगूली पकड़ कर चलाते हैं और खतरेसे बचा लेते हैं। इसी प्रकार मन का स्वभाव भी चंचल है। वह चलाना चाहता है तो आप अच्छे कार्यों-विचारों की ओर उसे मोड़ दीजिये। व्यर्थ विचारों से हटाकर परमात्मा की प्रार्थना में लगाईये। तत्व ज्ञान का चिन्तन करने में लगाईये। मन काबू में न रहे अतः सामायिक करना ही छोड़ बैठना कहां का न्याय है। जो व्यक्ति कुछ अध्यन करता है उसी की भूल निकाली जाती है। जो कुछ पढ़ता ही नहीं है, उसकी क्या भूल निकाली जायगी।

आज कल देखा जाता है कि जो सार्वजनिक कार्य करता है उस की लोग बहुत टीका टिप्पणी किया करते हैं। उसके कार्यों में दोष निकाला करते हैं और यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हम अच्छे हैं जो कुछ नहीं करते हैं। किन्तु यह तो अकर्मण्यता की ओर बढ़ना है। जो दौड़ लगाता है। वही गिरता है। जो दौड़ में शामिल ही नहीं होता वह क्या गिरेगा वह तो निष्क्रिय व्यक्ति है जो दूर बैठा २ दूसरे को गिरते हुए देखकर हंसता रहता है। जो स्वयं सामायिक न करके

दूसरों की सामायिक के दोष देखता रहता है वह सामायिक करने वाले की अपेक्षा निकम्मा है। अतः सामायिक न करने की बात कहने की अपेक्षा सामायिक करके उसमें मन को काबू में करने की कोशिश करना चहिए। गल्ती को मिटाने की कोशिश करना चाहिए न कि गल्ती के डर से कार्य ही न करना। प्रयत्न करने से दोषों में कमी होती जाती है। धीरे २ आगे बढ़ा जाता है।

सनाथी मुनी श्रेणिक राजा को कहते हैं कि हे राजन्! एकाग्र चित होकर मेरी बात सुन। मन में जो व्याक्षेप हो, कोई अन्य बात हो उसे निकालकर शुद्ध चित्त से सनाथ अनाथ का स्वरुप सुन। मैं किसी दूसरे पर बीती हुई घटना नहीं सुनाता हूं किन्तु आप बीती सुनाता हूं। दूसरे पर बीती हुई घटना कहने में भूल भी हो सकती है अथवा उसे तोड़ मरोड़ कर अन्यथा भी कहा जा सकता है किन्तु मैं अपने पर बीती घटना सुना कर तेरे को समझाना चहता हूं कि मैं भी पहले किस प्रकार अनाथ था और बाद में किस प्रकार सनाथ बना हूं।

आप सनाथ हैं या अनाथ इस बात पर विचार करिये। यदि आप अपने को अनाथ मान कर चलेंगे तो सनाथता का स्वरुप भी समझ में आ जायगा। किन्तु भूल यह होती है कि आत्मा अनाथ होता हुआ भी स्वयं को अनाथ मानने के लिए तय्यार नहीं होता। परमात्मा के समक्ष अपनी अनाथता स्वीकार नहीं करता। किन्तु भक्त लोग अपनी अनाथता स्वीकार

कर लेते हैं। यह बात मैं तुलसीदासजी की कविता द्वारा कहता हूं। ऊपर से आपको कुछ अंतर दिखाई देगा किन्तु गहराई से विचार करने पर कोई अंतर मालूम न देगा।

तू दयालु दीन हौं तू दानी हौं भिखारी,
हौं प्रसिद्ध पातकी तू पाप पुंजहारी।
नाथ तू अनाथ को अनाथ कौन मो सों,
मो समान आरत नाहिं आरतहर तौं सों।

यह आत्म समर्पण भाव है। आत्मा को परमात्मा में समर्पण कैसे करना यह बात इस कविता में बताई हुई है। अनाथी मुनि जो कुछ कहते हैं वही बात शब्दान्तर से तुलसीदासजी ने कही है।

परमात्मा को आत्मसमर्पण करने की कला कवि की भाषा और कवि की कविता से समझो। परमात्मा को दीन दयालु कहा जाता है, ढींग दयालु नहीं। अब आप अपने पर विचार करो कि आप दीन बनकर प्रार्थना करते हैं या ढींग बनकर। परमात्मा दीन दयाल है और आप ढींग-अभिमानी हैं। वैसी हालत में दोनों का मेल बैठे तो कैसे बैठे। आप कहेंगे हम दीन कैसे बनें। जब तक मन में अभिमान है तब तक दीन नहीं बना जाता। दीन बनने के लिए अपना अभिमान छोड़ दो। फिर परमात्मा आपका रक्षक बन जायगा। वैसे तो आप न मालूम किन किन के सामने दीन बन जाते हैं किन्तु परमात्मा के सामने दीन नहीं बनते।

विवाह हो जाने पर आप सोचते हैं हम घर के मालिक बन गये हैं। लेकिन विचार करो कि विवाह से आप दीन बने हैं या नहीं ? जिस तरह कुत्ता रोटी के लिए दुम हिलाता है और अपना पेट दिखाता है उसी तरह आप स्त्री के सामने दीनता दिखाते हैं या नहीं। विषय वासना के वशीभूत होने पर आत्मा इस तरह गुलाम बनता ही है। बड़े २ राजा महाराजा भी वेश्या के वशीभूत होकर उसके सामने दीन बनकर उसके गुलाम बने हैं। उदाहरणों की कमी नहीं है।

मतलब यह है कि दीन बनने का आत्मा का स्वभाव है किन्तु परमात्मा के सामने वह दिन नहीं बनता। उसके सामने दीन बनने में कठिनाई अनुभव करता है। समस्त अभिमान छोड़कर परमात्मा के समक्ष दीनता धारण करने पर ही संसार समुद्र से बेड़ा पार हो सकता है।

कवि आनन्दघनजी ने कहा है:—

प्रीति सगाई सौ करै प्रीति सगाई न कोय
प्रीति सगाई निरुपाधिक करे सोपाधिक धन खोय

प्रीतिसगाई—सांसारिक लोगों के साथ प्रेम या दीनता तो सब कोई करते हैं किन्तु परमात्मा के साथ प्रीति विरले ही करते हैं। मोहयुक्त प्रीति करते करते जीव को अनन्तकाल वित चुका है। यह सोपाधिक दीनता है। किन्तु परमात्मा के साथ निरुपाधिक प्रीति या दीनता न करने के कारण जीव संसार में परिभ्रमण कर रहा है। सोपाधिक दीनता करने से

दीनता घटने के बजाय बढ़ती है, ज्यों २ दीनता दिखाकर साधन सामग्री जुटाई जाती है त्यों त्यों आवश्यकताएं बढ़ती जाती हैं और जीव पराधीन होता जाता है।

तब आप कहेंगे हम क्या करें? यही करिये कि अपनी सब आशा तृष्णा और भावनाएं परमात्मा के समर्पण कर दीजिये। उसके सामने अभिमान तजकर दीन बन जाइये। उसकी शरण में अपने सारे बल को छोड़ दीजिये। ऐसा समर्पण एक गरीब से लेकर अमीर तक सब कोई कर सकते हैं। अंधा बहरा गूंगा लूला लंगड़ा सब अपने को परमात्मा के समर्पण कर सकते हैं। किसी के लिए रुकावट नहीं है परमात्मा के समर्पण करने के बाद फिर अपना बल आजमाइश करने की जरूरत नहीं। सब कार्य अपने आप सिद्ध हो जाते हैं।

कदाचित् कोई कहे कि दीनता मिटाने के लिए किसी राजा रईस या सेठ की शरण लेने से काम चल सकता है। परमात्मा के शरण की क्या जरूरत है। किन्तु राजा की शरण से दीनता मिटती नहीं बल्कि बढ़ती जाती है। राजा आदि की शरण से दीनता किस प्रकार बढ़ती है, यह बताने के लिए ही शास्त्र में कपिल ब्राह्मण का दृष्टान्त प्रसिद्ध है।

कपिल श्रावस्ती के राजपुरोहित का लड़का था। पढ़ने के लिए कौशम्बी नगरी में रहता था। वहां एक दासी से उसकी मित्रता हो गई। दासी को रिझाने के लिए धन्नासेठ द्वारा प्रतिदिन दिया जाने वाला दो माशे सोने का दान लेने

के लिए एक दिन वह रात को वारह वजे ही निकल पड़ा। कारण कि प्रातःकाल जो सर्वप्रथम पहुंचता था उसी को यह दान मिला करता था। जल्दी पहुंचने की धून में वह रात को वारह वजे ही निकल पड़ा। मार्ग में चोर के शक में सिपाहियों द्वारा पकड़ा गया और प्रातः राजा की पेशी में उपस्थित किया गया।

कपिल की शक्ल सूरत देख कर राजा विचार ने लगा कि यह चोर नहीं मालूम देता। उधर कपिल मन में विचार करता है कि इस राजा का श्रावस्ति नगरी के साथ वैर विरोध है अतः श्रावस्ती निवासी होने के कारण मुझे कसके दण्ड देगा कुछ भी हो झूठ तो न बोलूंगा।

राजा ने कपिल से पूछा तू कहां रहता है ? कपिल ने कहा—श्रावस्ति नगरी में रहता हूं। श्रावस्ती का नाम सुनते ही राजा के स्वभाव में गर्मी आगई श्रावस्ती का वैर याद आगया। क्रोधित होकर राजा ने पुनः पूछा--किसका लड़का है ? कपिल ने कहा--श्रावस्ती के राजा के राज पुरोहित काश्यप का लड़का हूं। राजा ने कहा--तव तो मेरे शत्रु के मित्र का लड़का है अतः मेरा शत्रु ठहरा। अच्छा यहां क्यों आये थे श्रावस्ती में मुझ से घृणा की जाती और कोई पढ़ाता न था अतः यहां पढ़ने के लिए आया हूं, कपिल ने उत्तर दिया। रात को क्यों निकले थे ? कपिल ने कहा—यह किस्सा लम्बा है। मैं उपाध्या के पास पढ़ता हूं और शालिभद्र सेठ के यहां से भोजन पाता हूं। एक दासी मेरे यहां काम करने आती है।

मैं उसके साथ फंस गया हूं। वह लोभिन है। उसने त्यौहार बता कर मुझ से कपड़े मांगे। मैं दारिद हूं 'तूझे कपड़े कहां से दूं' कहने पर उसने उपाय बताया कि इस नगरी में धन्ना सेठ प्रातःकाल सर्व प्रथम पहुंच कर आशीर्वाद देने वाले को दो माशा सोना भेंट दिया करता है। उसके यहां जाकर सोना ले आओ।

मैं धन्ना सेठ को सर्व प्रथम आशीर्वाद देकर सोना लेले की धून में समय असमय को भूल गया और रात को बारह बजे ही निकल पड़ा। रास्ते में आपके सिपाहियों ने चोर के शक में मुझे पकड़ कर आप के सामने उपस्थित किया है। अब आप मालिक हैं। जो चाहें करें।

कपिल का बयान सुन कर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। वह कहने लगा कि यद्यपि तू मेरे शत्रु राजा के पुरोहित का लड़का है फिर भी मैं तेरी स्पष्ट और सत्य वादिता पर बहुत प्रसन्न हूं। तू जो कुछ मांगना चाहता है, मांग। मैं वणिक नहीं हूं जो खाली बातों से राजी कर दूं। 'वणिक् तुष्टे देत हस्तताली'। मैं क्षत्रिय हूं। जो चाहे मांगले। कपिल विचार में पड़ गया कि क्या मांगना चाहिए। पहले बिना विचारे घर से निकला उसका नतीजा अच्छा न हुआ। अब राजा से जोकुछ मांगना वह विचार कर ही मांगना चाहिए। उसने राजा से कहा कि महाराज! मुझे दो घड़ी का समय विचार करने के लिए दीजिये ताकि आप की अशोक वाटिका में बैठ कर यह सोच लूं कि आप से क्या मांगू। राजा ने विचार करने का अवसर दे दिया।

कपिल अशोक वाटिका में बैठकर विचार करने लगा कि राजा से क्या मागूं। यदि दो मासा सोना मांगता हूं तो उनसे स्त्री के कपड़े भी पूरे न बन पायंगे। मैं कोरा ही रह जाऊंगा। वह अच्छे अच्छे कपड़े पहनेगी और मैं उसका मुंह देखता रह जाऊंगा। यदि दस पांच मासा सोना मांगता हूं तो सादी पोषाक बन जायगी। राजरानी के समान पोषाक न बन सकेगी। यदि सौ दो सौ सोनैया मांगता हूं तो पोषाक बढ़िया बन जायगी मगर दागिनों के बिना पोषाक क्या खुलेगी। यदि स्त्री के लिए आभूषणादि मांग लेता हूं फिर भी मैं तो कोरा ही रह जाता हूं। राजा और रानी दोनों की पोषाकें और आभूषण मांग लूं। किन्तु इतनी बढ़िया पोषाक और आभूषण पहनकर झोंपड़ों में कैसे रहेंगे। अतः महल भी मांग लूं महल में रहकर हाथों से काम करने में लज्जा आवेगी अतः नौकर चाकर भी चाहिए। नौकरों को तनख्वाह चुकाने के लिए रुपये भी चाहिए अतः दो चार ग्राम भी मांग लूं। इतना होने पर भी मेरी हुकुमत तो नहीं चलेगी अतः राजा का सारा राज्य ही मांग लूं। राजा वचनवद्ध है, क्षत्रिय है, अतः राज्य देने से इन्कार तो न करेगा। किन्तु राज्य देने बाद राजा मुझसे ईर्षा द्वेष रखने लगेगा अतः राजा को जेल में बंद कर देना होगा। इसलिए मैं राजा से यही वर मांग लूं कि तुम्हारा सारा राज्य मुझे दे दो और स्वयं जेलखाने में बन्द हो जाओ।

यह निश्चय करते ही पुनः उसे विचार आया कि राजा वचनबद्ध होने के कारण राज्य दे देगा किन्तु यह राज्य मेरे

अनादर का ही कारण होगा। सब लोग मेरी निन्दा करने लगेंगे कि राजा से इस प्रकार राज्य मांग लिया। यह ब्राह्मण कितना नीच है कि इसने राजा की वचनवद्धता का ऐसा दुरुपयोग किया है। ऐसे नीच को कभी वचन न देना चाहिए।

यह विचार आते ही ब्राह्मण की विचारधारा पलटने लगी। ओह! मैं दो मासा सोना मांगते मांगते सारा राज्य मांगने पर उतारू होगया। और इतने पर भी मेरी इच्छा शांत न हुई जो राजा को बंदी बनाने का भी वचन मांगना तै किया वास्तव में मैं राजा को बंदी नहीं बनाना चाहता हूं किन्तु अपनी अनन्त तृष्णा के वशमें होकर अपने को बंदी बना रहा हूं। वस्तुओं से कभी इच्छा पूर्ति नहीं हो सकती। ज्यों ज्यों वस्तुएं मिलती जाती हैं, आत्मा अधिकाधिक गुलाम बनता जाता है। सब पदार्थ मुझसे परे हैं। मेरा इनसे कोई सम्बंध नहीं है। ज्ञान दर्शन आदि गुण ही मेरे हैं।

इस प्रकार विचार करते हुए कपिल को अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। उसे अपना पूर्व जन्म हाथ की रेखा की तरह दिखाई देने लगा।

एक कथा में यों भी कहा है कि देवता ने साधुयोग्य वस्त्र दिए जिन्हें पहनकर कपिल राजा के पास गया। राजा ने पूछा—यह क्या किया? साधु क्यों बन गये। कपिल ने कहा राजन्! मुझे जो चाहिए था वह मिल चुका है। राजा ने कहा

आखिर बात क्या हुई सो कहिए। कपिल ने कहा--महाराज! दो मासा सोना मांगते मांगते तुम्हाहा सारा राज्य मांगकर तुम्हें जेल खाने में बंद कर देने तक की इच्छा पैदा हो गई। किन्तु इतने पर भी शान्ति नहीं मिलती थी। अपमान जन्य दुखः बाकी रह जाता था। तृष्णा बढ़ती ही आती थी। अंत में मैंने तृष्णा घटाना शुरू किया और संतोष वृति धारण की। जिससे सच्चा ज्ञान पैदा हो गया और अनन्त शान्ति प्राप्त हुई है। अब राज्यादि के झंझट में नहीं पड़ना चाहता। अब राज्य में सुख नहीं मालूम देता।

राजा ने पुनः कहा—कपिल! मैं तुझ को लिख देता हूं कि मैं जन्म भर तुम्हारा सेवक बना रहूंगा और कोई शत्रु राज्य पर चढ़ाई कर के आयेगा तो मैं तुम्हारी सहायता भी करूंगा।

कपिल ने कहा—राजन्! अब मुझे राज्य करने का मोह ही नहीं है। मैं एक बात पूछता हूं कि यदि मैं पहले तेरा राज्य मांग लेता तो तू मुझ से वैर भाव रखते या नहीं? यह तो मेरे त्याग का प्रभाव है जो तुम स्वयं स्वेच्छा से राज्य तक दे देना चाहते हैं। जिस त्याग को अपना ने से राज्य मिल सकता है उस त्याग का महत्व कितना है। राज्य बड़ा रहा या त्याग? मैं त्याग के सामने राज्य को तुच्छ समझता हूं

राजा ने कहा—महात्मन्! आप का मोह दूर हो गया इस लिए राज्य श्री को भी तुच्छ समझने लग गये हैं। किन्तु

मैं तो साधु नहीं बन सकता अतः संसार में रहते हुए भी कुछ आत्म कल्याण कर सकूं वैसा उपदेश दीजिये।

कपिलमुनि समयोचित उपदेश सुनाकर आत्मकल्याणार्थ वन में चले गये। वन में भी पांच सौ चोरों को प्रतिबोध देकर उन्हें आत्म कल्याण की ओर लगाया। इस प्रकार कठिन साधना से केवल ज्ञान प्राप्त करके अंत में वे सिद्ध, बुद्ध हो गये।

कहने का सारांश यह है कि संसार में दीनता करने का स्वभाव तो है मगर दीनता उनके सामने की जाती है जो स्वयं ही दीन है। जो स्वयं दीन है वह दूसरों की दीनता का हरण कैसे कर सकता है। जिनके जरिये नाथ बनने की कोशिश की जाती है उनके जरिये उलटे अनाथ बन जाते हैं। इसलिए हे भव्य प्राणियो! परमात्मा की शरण पकड़ो। उसकी शरण में जाने से सनाथ बन जाओगे।

सनाथी मुनि श्रेणिक राजा से कह रहे हैं कि राजन्! मैं तुमको नाथ अनाथ का स्वरूप अपनी जीवन घटना बताकर समझाता हूं तुम अव्याक्षिप्त चित्त से सुनो।

चरित्र

जो वस्तु अनेक प्रयत्न करने पर भी नहीं मिलती वह आत्मा पर अधिकार करने से किस प्रकार प्राप्त होती है यह बात कथा द्वारा बताता हूं। सुदर्शन और मनोरमा धार्मिक

क्रियाओं में तो दक्ष थे ही। व्यावहारिक कार्यों में भी इतने दक्ष थे कि सब लोग उनसे बड़े प्रसन्न रहते थे।

आप लोगों को यह ख्याल पैदा हो सकता है कि महाराज आप व्यावहारिक क्रियाओं की बात क्यों कहते हो। व्यवहार में तो हम लोग दक्ष हैं। आप तो हमें धार्मिक कार्यों की बातें बतावे। किन्तु मित्रो! आध्यात्मिकता और व्यावहारिकता दोनों को समान रूप से सुधारने की जरूरत है। जब तक दोनों का सुधार न हो तब तक शांति नहीं मिल सकती। दोनों का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। आध्यात्मिकता के बिना व्यवहार शुष्क होगा और व्यवहार के बिना आध्यात्मिकता कोरा आदर्शवाद होगा।

कोई साहित्य आपका व्यवहार सुधार देता है और आपको व्यावहारिक शान्ति भी देता है किन्तु उससे यदि आत्मिक शांति न मिली तो वह शांति वास्तविक शांति न होगी। क्षणिक शांति होगी। वही शांति और सुधार सच्चा गिना जा सकता है जिससे आत्मा को सुख मिले। आध्यात्मिक सुधार तभी हो सकता है जब व्यवहार सुधरा हुआ हो। कई अविचारक लोग अध्यात्म और व्यवहार का संबंध ही नहीं समझते, वे कहते हैं व्यवहार और अध्यात्म सर्वथा भिन्न हैं। एक दूसरे का कोई संबन्ध नहीं है। मगर मैं कहता हूं—लौकिक कर्त्तव्यों में अच्छाई आये बिना अध्यात्म कर्त्तव्य में अच्छाई कैसे आसकती है। जो नैतिक नियमों का भी पालन नहीं करता वह अध्यात्म का साधन कैसे कर सकता है।

व्यवहार और अध्यात्म परस्पर सम्बद्ध हैं।

किन्तु व्यवहार साधना में उलझ कर यदि अध्यात्म साधना में ध्यान न दिया जाय तो सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। सच्ची शांति और सुख का स्रोत आत्मा है। सुभग के पेट में खूँटा घुस गया था फिर भी उसने धैर्य न छोड़ा और नवकार मंत्र का ध्यान करता रहा। यह आध्यात्मिक सुधार का परिणाम था। और उसी शुभ भावना का नतीजा है जो सुदर्शन के भाव में वैभव और सम्पत्ति मिली है।

वर्तमान युग में कई लोगों को आत्मा पर भी विश्वास नहीं है। यद्यपि वे नित्य आत्मिक शक्ति का परिचय पाते हैं फिर भी भूलते हैं। इस विषय में मैंने शांकर भाष्य में बहुत कुछ देखा है। वह सब कहने जितना अभी समय नहीं है। किन्तु उस भाव को अत्यन्त सरल बना कर कुछ आप के सामने रखता हूं।

आप लोग स्वप्न देखते हैं। स्वप्न वैसा ही होता है। जैसा खुद विचार होता हैं। जागृत अवस्था में यदि खराब भाव रहे तो स्वप्न भी खराब ही आता है और यदि अच्छे भाव रहे तो अच्छा स्वप्न आता है। यह बात सब के अनुभव की है अपनी माता के साथ बुरी हरकत करने का किसी को स्वप्न नहीं आता क्योंकि कोई भी इन्सान ऐसा करने की जागृत अवस्था में कल्पना भी नहीं करता। यह बात सब के अनुभव की है कि जैसा परिणाम होते हैं तदनुसार ही स्वप्न

आते हैं। कई वर्षों पूर्व कोई कार्य करने का संकल्प आया हो, किसी के साथ वैरभाव रहा हो, किसी स्त्री पर बुरी नजर गई हो अथवा कोई दृश्य देखा हो, सुना हो, आस्वाद लिया हो, स्पर्श किया हो, उन सब घटनाओं का दर्शन स्वप्न में हो जाया करता है। जैसा विचार वैसा स्वप्न। अदृष्ट अश्रुत और अक-ल्पित का स्वप्न नहीं आ सकता। यह बात जुदी है कि देखी हुई वस्तु का स्वप्न में उल्टा सुल्टा सम्बन्ध भी दिखाई देता है जैसे गधे के मस्तक पर सींग दीखाई देना। गधा भी देखा है और गाय भैंस के मस्तक पर सींग भी देखे हैं। स्वप्न में गाय भैंस के सींग गधे के सिर पर भी कभी २ देखे जा सकते हैं अथवा जागृत अवस्था में गधे के मस्तक पर सींग होने की कल्पना की हो तब वैसा स्वप्न आ सकता है। कहने का सारांश कह है कि इस जन्म में कभी दृश्य देखा या विचार हो वह स्वप्न में आलोकित हो सकता है।

जो बात स्वप्न पर लागू होती है वही पुनर्जन्म पर समझ लीजिये। वर्तमान जन्म में जीव जिन भावों को लेकर मरता है पुनर्जन्म में उन्हीं भावों को प्राप्त होता है। 'जं लेस्सं मरीज्जइ तं लेस्से उववज्जइ, जिस लेश्या से युक्त होकर जीव शरीर छोडता है उसी लेश्या में दूसरा शरीर भी धारण करता है। अर्थात् मरते वक्त जैसे परिणाम होते हैं दूसरी योनि में जन्म लेते वक्त भी वैसे ही परिणाम होते हैं। गीता में भी कहा है—

> यं यं वापि स्मरन् भावं त्यजन्त्यन्ते कलेवरम्।
> तं तमेवैति कौन्तेय! सदा तद्भावभावितः॥

अर्थात्—जीव अन्तिमावस्था में जिस जिस भाव--विचार का चिंतन करता हुआ कलेवर छोड़ता है पुनः उन्हीं भावों में दूसरा जन्म ग्रहण करता है। पुनर्जन्म की वात स्वप्न से हमारे समझ में आजाती है फिर भी कई लोगों को आत्मा पर विश्वास नहीं होता। यह भूल हैं।

किया सेठ ने काल, कुंवर ने जब पाया अधिकार।
पर उपकारी पर दुःखहारी, निराधार आधार रे धन॥

जिनदास सेठने जब देखा कि सुदर्शन सब व्यावहारिक कार्यों में कुशल हो गया है तब घर और संसार का सारा भार उसको सौंप दिया और स्वयं परमात्मा का भजन करने में--धर्मकार्य करने में लग गया।

आज बहुत से लोग मरने की अन्तिमावस्था तक व्यापार व गृहस्थी का सारा बोझा अपने ही ऊपर रखते हैं। अपने पुत्रों की योग्यता पर विश्वास नहीं करते। जब उनका दम निकल जाता है तब उनके कन्दोरे से दुकान व तिजोरी की चावियां खोलकर उनके पुत्र संभालते हैं। ऐसे वृद्धलोग सदा अपने लड़कों को नादान या ना समझ ही समझते रहते हैं।

किन्तु वे लोग यह नहीं सोचते कि उनके मरने के बाद उनके घर व सम्पत्ति का क्या हाल होगा। ऐसे लोग अपना तो बुरा करते ही हैं साथ में अपने पुत्रों को कार्य सीखने का मौका न देकर उनका भी अनिष्ट करते हैं। जो

पिता अपने सामने अपने पुत्रों को सारा कारोबार सौंपकर स्वयं धर्म-ध्यान में पिछली उम्र व्यतीत करते हैं, वे अपने पीछे अच्छा उदाहरण छोड़ जाते हैं। उनके पुत्र भी इसी परीपाटी का अनुकरण करते हैं। किन्तु जिनसे मरते वक्त तक चावियां नहीं छूटती उनके पुत्र यही समझ लेते हैं कि संसार में अंतिम दम तक फंसे रहने में ही सार है इसी लिए हमारे पिता भी अंत तक फंसे रहे।

इसका प्रत्यक्ष उदाहरण यह है कि जो नेता लोग संसार व्यवहार में रहते हुए घर वार आदि का भार अपने ऊपर रखते हुए किसी वात का उपदेश देते हैं उनकी वात कितनी मानी जाती है और जो स्वार्थ त्यागकर उपदेश देते हैं उनकी वात किस तरह मानी जाती है। त्याग का प्रभाव ही ऐसा है। बौद्धधर्म की एक पुस्तक में मैंने पढ़ा है कि बुद्ध ने ऐसा नियम बनाया था कि राजा के दो पुत्र हों तो एक राज्य-भार संभाले और दूसरा बौद्ध दीक्षा अंगीकार कर अपना व संसार का भला करे।

आप लोगों से यदि यह कहा जावे कि आप भी अपना एक पुत्र जैन धर्म व संसार की सेवा के लिए हमें सौंप दीजिये तो आप क्या कहेंगे। आप यही कहेंगे कि महाराज! और सब कुछ कहो किन्तु यह वात मत कहो। आपको अच्छे साधु तो चाहिए किन्तु अपने सुसंस्कारी पुत्रों को सौंपने में कठिनाई होती है। अच्छे साधु आवें तो कहां से आवें। यदि आपने साधुत्व को अच्छा समझा होता तब तो

अपने पुत्र को दीक्षित होते हुए देखकर आपको भी आनन्द आता। पहले जमाने में राजा महाराजा और बड़े-बड़े लक्ष्मी-पति सेठ साहूकार दीक्षा लेते थे जिससे धर्म व दीक्षा का महत्व साधारण लोगों की निगाह में आ जाता था। आज यदि किसी सेठ को दीक्षा के लिए कहा जाय तो बड़ी कठिनाई महसूस होती है। ऐसी दशा में जन साधारण को त्याग का महत्त्व कैसे मालूम हो।

सेठ जिनदास दीक्षा अंगीकार न कर सका किन्तु गृह-कार्य का भार पुत्र को संभलाकर धर्मध्यान में जीवन बिताने लगा। इस तरह सेठ काल कर गया। सुदर्शन और मनोरमा ने संसार का भार संभाल कर उनका भार हल्का कर दिया और जिनदास तथा अर्हद्दासी का मरण सुधार दिया।

नगर के लोगों को जब पता लगा क जिनदाश सेठ काल कर गये हैं। तब वे बहुत शोकाकुल हुए। उनका शोक उनके सुयोग्य पुत्र सुदर्शन को देख कर मिट गया। नगर वासियों ने नगर सेठ का पद सुदर्शन को देना तै किया। वहां के राजा को जब यह सुसंवाद प्राप्त हुआ तब वह भी प्रसन्न हुआ। सोने के कटोरे में घी डालना कौन ना पसन्द करेगा। ठीकरे में घी डालना कठिन होता है किन्तु सुवर्ण पात्र में घी देने में प्रसन्नता होती है।

राजा व प्रजा दोनों ने मिलकर सुदर्शन को नगर सेठ की पदवी से विभूषित किया। नगर सेठ के क्या कर्त्तव्य हैं,

यह विषय लम्बा है। आज कल लोग रायबहादुर और राज्य भूषण आदि की उपाधियां तो ले लेते हैं किन्तु उन उपाधियों के पीछे उनकी क्या जिम्मेदारियां हैं, नहीं जानते। पैसे देकर पदवियां लेते हैं और उनके गुलाम बन जाते हैं। इस तरह गुलाम बनना और बात यह है और प्रजा की सेवा करना और बात है। सुदर्शन नगर सेठ बने हैं। अब आगे क्या होता है इसका विचार आगे पर है।

४-८-३६

राजकोट
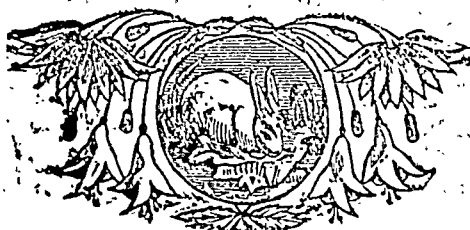
४

आदर्श नगर सेठ

मल्लिजिन बाल ब्रह्मचारी, 'कुम्भ' पिता 'परभावती' मैया;
तिनकी कुमारी, मल्लिजिन बाल ब्रह्मचारी ॥

प्रार्थना—

यह उन्नीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना है। जिस समय जिन भावों पर दृष्टिपात किया जाता है उस समय वे ही भाव हृदय में आकर प्रकाशमान होते हैं। इस पर से यह विचार करना चाहिए कि जब मेरी दृष्टि जिस भाव पर पड़ती है तब वही भाव हृदय में आकर प्रकाश फैलाता है। परमात्मा की प्रार्थना में विविध भाव भरे हुए हैं। जिस समय जिस भाव पर दृष्टि चली जाती है उस समय उसी भाव का प्रकाश मेरे हृदय पट पर पड़ता है। इस प्रकार

आत्मा में कितने ही भावों का उद्भव होना चाहिए। हीरे की एक झलक से जब एक पदार्थ प्रकाशित होता है तब हीरे में कितनी झलक होनी चाहिए।

कौन २ से भाव आत्मा में आते रहते हैं, सब भाव एक साथ क्यों नहीं आते यह बात क्षायिक भाव से सम्बन्ध रखती है। जिस जीव के ज्ञान वरणीय कर्म सर्वथा नष्ट हो चुका है उसको क्षायिक भाव होता है। और उसीको सब भावों का प्रकाश एक साथ प्राप्त होता है। अतः परमात्मा की प्रार्थना में आये हुए भावों पर से अपनी शक्ति का विचार करो। आप को परमात्मा का स्मरण करते हुए कितने भावों का प्रकाश मिलता है, इस पर सोचो। यदि आप अपनी शक्ति पर विचार करेंगे तो आप में अद्भुत शक्ति मालूम देगी। आज प्रार्थना पर अधिक न कह कर इताना ही कहता हूं कि जिसे परमात्मा की सच्ची भक्ति करना है उसी मल्लिनाथ की इस प्रार्थना पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

इस में सगुण निर्गुण दोनों प्रकार की प्रार्थना की गई है जिसमें कम योग्यता है वह सगुण प्रार्थना कर सकता है और जिस का आध्यात्मिक विकास अधिक हो चुका है वह निर्गुण प्रार्थना कर सकता है। सगुण और निर्गुण दोनों प्रकार की भक्ति होती है। भक्ति सूत्र में कहा है।

तत्तु विषयत्यागात् सङ्गत्यागाच्च

पांचों इन्द्रियों के विषयों में आसक्त न रहने से और

संग का त्याग करने से भक्ति होती है। अच्छे की संगति करने और बुरे की संगति त्यागने से जीव भक्ति मार्ग पर पहुंच सकता है। जिसकी संगति बुरी है वह भक्ति मार्ग नहीं चल सकता। यदि ऐसा आदमी भक्ति मार्ग में जावेगा तो वह और खरावी पैदा करेगा। जिनसे विषय वासना नहीं छूटती वे लोग यदि भक्ति मार्ग में जाते हैं तो वहां भी अपने इन्द्रिय सुखों का ही पोषण करते हैं। भक्ति का ऊपर से ढोंग दिखाते हैं और अन्तर में विषय का सेवन करते हैं। वे मिथ्याचारी कहलाते हैं। ऐसे लोग स्वयं पाप में डूबते हैं और अपनी संगति में आने वाले अन्य लोगों को भी पाप में डूबोते हैं।

भगवान् मल्लिनाथ की प्रार्थना में यही बात बताई हुई है कि परमात्मा की भक्ति करने के लिए विषयेच्छा का त्यागन करना परमावश्यक है। भगवान् मल्लिनाथ के पूर्व जन्म के साथी उन छओं राजाओं ने जब विषयेच्छा को त्याग दिया तभीवे भक्ति मार्ग पर आरुढ़ हो सके। और समीप से सायुज्य में पहुंच सके।

शास्त्रः—

राजा श्रेणिक से अनाथी मुनि अपनी आप बीती सुना रहे हैं। अनाथी मुनि ने एकाग्रता पूर्वक सुनने के लिए राजा का ध्यान खींचा है। यह बात आप सब श्रोताओं के लिए भी लागू है। आप लोग भी सावधानी पूर्वक अनाथता का स्वरूप समझिये। अनाथी मुनि अनाथता की भूमि पार कर के सनाथता की भूमि में पहुंच चुके हैं। आप लोग भी अपने

लिए विचार करें कि आप कौन सी भूमिका पर स्थित हैं।

'दुनिया का यह रिवाज है कि 'काम सर्या कि दुःख विसर्या' अर्थात् काम सिद्ध हुआ कि दुःख भूल जाते हैं। जब मनुष्य बीमार पड़ जाता है, मृत्यु को निकट समझता है, तब बड़ा वैराग्य आ जाता है। और सोचता है कि अब की बार अच्छा हो जाऊँगा तो अमुक प्रकार से धर्म ध्यान करूंगा। जब बीमारी दूर हो जाती है और चंगा हो जाता है तब बीमारी के वक्त की हुई सारी बातें भूल जाते हैं। और पूर्ववत व्यवहार जारी कर देते हैं। दुःख दूर हो जाने पर वह दुःख को ऐसे भूल जाता है जैसे दुःख कभी भोगे ही नहीं हैं। अपने भूत काल को भूल जाता है। यदि मनुष्य अपने भूतकालीन अनुभवों को याद रख कर आगे का मार्ग तै करे तो वह किसी भी जीव से घृणा नहीं कर सकता। वह किसी दुःखी जीव को देखकर यह सोचेगा कि ऐसी दुःखमय अवस्था में स्वयं भोग चुका हूं। उस अवस्था में मैं छटपटाता था और दुःख से दूर होने की कामना किया करता था। जिस व्यक्ति ने मेरे दुःख को दूर करने में सहायता पहुंचाई थी वह मुझे बड़ा प्यारा लगा था। अतः मेरा कर्तव्य है कि मैं भी इसी प्रकार दूसरों के दुःखों को दूर करने में निमित बनूं।

किसी कसाई को देखकर आप उसका तिरस्कार करेंगे। किन्तु ज्ञानीजन उसके प्रति मध्यस्थ भावना रखते हैं। और यह विचार करते हैं कि ऐसी स्थिति हमने भी कभी किसी जन्म में भोगी हुई है। मैं भी कभी कसाई रहा हूं और बकरे,

को मारा है। मेरा आत्मा भी बकरा रहा है और कसाई द्वारा मारा गया है। मैं कसाई होने की अवस्था में भी दूसरों के द्वारा दया का अधिकारी रहा हूं। जब मुझ कसाई को किसी ने मारने की चेष्टा की थी तब मैं अपना बचाव करना चाहता था और मुझ पर दया दिखाने वाले को अच्छा समझता था। इसी प्रकार इस भव में मेरा भी धर्म है कि मैं कसाई पर भी दया करुं। उस पर माध्यस्थ भाव धारण करुं। यह ज्ञानियों की विचार धारा है। यह सोचकर ज्ञानीजन पापी से भी घृणा नहीं करते।

संसार में कोई भी व्यक्ति कुकृत्य का काला तिलक अपने मस्तक पर निकलवाना पसन्द नहीं करता। फिर भी किसी के मस्तक पर कुकृत्य का काला तिलक देखकर ज्ञानी यही सोचता है कि यह व्यक्ति न चाहते हुए भी कर्मों की जाल में फंसा हुआ होने से काले तिलक से बदनाम है। आशा और तृष्णा की जाल में गूंथा हुआ परवशपन में बदनाम है। ज्ञानीजन उसको यही उपदेश देते हैं कि ऐ भूले प्राणि! अपने कलंक की कालिमा को सुकृत के द्वारा धो डाल! वे उससे घृणा नहीं करते बल्कि उसको सुधारने का प्रयत्न करते हैं। यही ज्ञानियों और अज्ञानियों में विशेषता है। जिस पापी व्यक्ति को उपदेश दिया जाता है वह उपदेश माने या न माने ज्ञानी तो अपना फर्ज अदा करते ही हैं। अपने भूतकाल के अनुभवों को याद करके ज्ञानीजन इस प्रकार आदर्श व्यवहार करते हैं।

अनाथी मुनि रोग ग्रस्त अवस्था के अनुभवों को भूले नहीं हैं। उन अनुभवों के आधार से वे राजा श्रेणिक को सनाथ अनाथ दशा का स्वरूप समझाते हैं।

गर्भावस्था के कष्ट आपने भी भोगे हैं। वे कष्ट आपको याद हैं या नहीं? वे कष्ट याद हों तो अभिमान करने का कोई कारण नहीं रह जाता। मूंछें किस कारण मरोड़ते हो। अपनी पूर्वावस्था का तो जरा स्मरण करो। तुम्हारा सारा अभिमान दूर हो जाता है। ज्ञानी उस पतित आत्मा को भी ऊंचा उठाते हैं। वे अपनी आत्मा के समान उसकी आत्मा को भी मानकर अज्ञानदशा में से उसका उद्धार करते हैं। अनाथी मुनि राजा श्रेणिक की अज्ञानदशा को मिटाने के लिए कहते हैं:—

कोसम्बी नाम नयरी, पुराणपुर भेयणी।
तत्थ आसी पिया मज्झ, पभूय धणसंचओ ॥ १८ ॥

भावार्थ—कौशम्बी नाम की नगरी--जो प्राचीन थी, प्राचीन कही जाती हुई नगरियों की प्राचीनता का भी वह उल्लंघन करने वाली थी। वहां मेरे पिता रहते थे। जिनके पास प्रचुर धन का संग्रह था। (उनका नाम भी प्रचुर धन संचयी था)।

कौशम्बी नगरी की प्राचीनता का वर्णन करने में मुनि का अभिप्राय उस नगरी की विशेषता बताना है। प्राचीन नगरों में जो विशेषता होती है वह नवीन नगरों में दृष्टिगोचर

का आशय यह है कि नवीन की अपेक्षा पुराने में अधिक गुण हो सकते हैं।

वैज्ञानिकों का कथन है कि कोयला और हीरा के परमाणु एक ही प्रकार के होते हैं। किन्तु कोयला की खुदाई जल्दी होजाती है जिससे वह कोयला ही रह जाता है। हीरा बहुत अर्से तक जमीन में रहने से हीरा होजाता है। एक ही प्रकार के प्ररमाणु थोड़ा समय और अधिक समय जमीन में रहने के कारण कोयला व हीरा कहे जाते हैं। कोयले और हीरे की किमत में कितना अंतर है यह तो आप लोग जानते ही हैं। इसी प्रकार मनुष्यों में भी जो ज्यादा उम्र व अनुभव वाले हैं उनकी कद्र उनसे अधिक होती है जो कम उम्र व कम अनुभव वाले होते हैं। बालक और वृद्ध अनुभवी में अंतर होता है। अन्य भी कई वस्तुएं हैं जो पुरानी होने के कारण ही श्रेष्ठ गिनी जाती हैं। पर्वत, वृक्ष और नगर आदि की पुराने होने से अधिक कीमत है। आज भी बनारस नगरी की विशेषता उसके पुराने होने के कारण देखी जाती है।

मुनि कहते हैं—कौशाम्बी नगरी प्राचीन थी। केवल प्राचीन ही नहीं थी उसके संस्कार भी पुराने थे। अनेक आघात प्रत्याघातों को सहन करती हुई वह अपनी हस्ती को कायम रखे हुए थी। प्राचीन नगरों से भी अति प्राचीन थी।

यहां यह प्रश्न होता है कि मुनि अनाथ सनाथ का स्वरूप बताते हुए नगर की प्राचीनता क्यों बता गये। नगरी

की प्राचीनता बताने का आशय यही मालूम होता है कि 'मैं ऐसी प्राचीन नगरी में रहता था जिसमें सुखके सब साधन मौजूद थे। मैं किसी ग्राम में न रहता था जिसमें ऐश आराम और जीवन की आवश्यक वस्तुओं का अभाव होता है। साधन सम्पन्न नगर में रहने पर भी मैं अनाथ था। कोई यह न समझले कि ग्राम में रहने से मैं अनाथ था। मैं नागरिक जीवन व्यतित करता था फिर भी अनाथ था।

अर्थापत्ति अलङ्कार से मुनि ने अपना निवास्थान भी बता दिया। 'उस नगर में मेरे पिता रहते थे' यह कहा। मगर यह न कहा कि 'मैं उस नगर में रहता था'। अपनी लघुता बताने के लिए और पिता का बड़प्पन जाहिर करने के लिए अर्थापत्ति अलङ्कार से काम लिया है। अर्थापत्ति अलंकार का थोड़ा स्वरूप बताता हूं। कई दार्शनिक इसे प्रमाण का भेद मान कर स्वतन्त्र प्रमाण मानते हैं।

'पीनो देवदत्तः दिवा न भुंक्ते'

तगड़ा देवदत्त दिन में भोजन नहीं करता है। भोजन किये बिना मनुष्य तगड़ा या पुष्ट नहीं हो सकता। किन्तु देवदत्त तो दिन में भोजन नहीं करता है फिर भी तगड़ा है। अर्थात् यह मानना पड़ेगा कि वह रात्रि में भोजन करता है। यह स्पष्ट नहीं कहा गया कि देवदत्त रात्रि भोजी है किन्तु तगड़े पन से रात्रि भोजी होना निश्चित हो गया। इसी तरह अपने पिता का स्थान बताकर अर्थापत्ति से अपना स्थान भी

मुनि ने बता दिया। महा पुरुष अपना बड़प्पन नहीं बताते किन्तु अपने से जो बड़े हैं उन को आगे रखते हैं।

जैसे जैन शास्त्रों के आदि में सुधर्म स्वामी शास्त्र वर्णन करते वक्त बार २ 'सुयं मे आउसं तेणं भगवया एव-मक्खायं' हे जम्बू! मैंने श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से ऐसा सुना है, जो सुना है, वही तुम को बताता हूं। सुधर्म स्वामी स्वयं चार ज्ञान व चौदह पूर्व के धारी थे फिर भी ऐसा नहीं कहा कि 'हे जम्बू! मैं ऐसा कहता हूं' किन्तु यह कहा कि 'भगवान् महावीर से मैंने ऐसा सुना है'। पहले के लोग अपने पूर्वजों का नाम आगे रखते थे। आप लोग क्या करते हैं सो जरा सोचो।

आज कल कई लोग पुराने लोगों को ढिच्चर बताते हैं कई तो ऐसे कुलकलंक भी सुने गये हैं जो अपने बाप को अपनी मित्र मण्डली में नौकर तक कह डालते हैं। किन्तु अच्छे और संस्कारी व्यक्ति अपने बड़ों का आदर सत्कार करते हैं और उनको आगे रखते हैं। सुना गया है कि चीन में पुत्र के पराक्रमी कार्यों के उपलक्ष्य में पिता को खिताब दिया जाता है। इस का यह अर्थ हुआ कि पिता के सुप्रयत्न से ही पुत्र योग्य बना है। इन्ही कारणों से अनाथी मुनि अपना नगर बता कर अपने पिता का परिचय देते हैं।

राजन्! मेरे पिता प्रभूत धन संचयी थे। जैसा उनका नाम था वैसा ही उनका गुण भी था। आज कल लोग केवल

नाम वड़ा रख लेते हैं। गुणों का कुछ पता ही नहीं होता। किन्तु पहले जमाने में अक्सर गुण सूचक नाम रखा जाता था गुणों के अनुसार ही नाम प्रसिद्धि पाता था। पिता को प्रभूत धन संचयी बता कर खुद को भी धनवान बता दिया। श्रेणिक ने कहा था कि मैं बड़ा ऋद्धिशाली हूं। मुनि ने भी जाहिर कर दिया कि मैं भी महा ऋद्धि सम्पन्न था। फिर भी अनाथ था। अतः हे राजन्! लक्ष्मीवान् होने के कारण तू अभिमान मत कर।

मुनि का कथन सुनकर राजा और अधिक आश्चर्य में पड़ गया। जब यह इतने ऋद्धि सम्पन्न थे तो फिर अनाथ कैसे रहे। मुनि आगे अपनी अनाथता बताते हैं। किन्तु यहां तो इतना ही समझना है कि चाहे कोई करोड़पति का पुत्र हो फिर भी यदि उसका आत्मा अनाथ है दीन है तो वह अनाथ ही है। सम्पत्ति और सुविधा से कोई सनाथ नहीं हो जाता। इस बात को आप यदि बुद्धि की कसौटी पर कसना चाहो तो कसकर देख लो। धन हीन तो सनाथ हो भी सकता है, मगर धनवान का नाथ होना कठिन है। वह अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओं के कारण अधिक पराधीन और अनाथ है।

कल मैंने प्रसंगवश यह कहा था कि यदि धनवान लोग मुनि धर्म—दीक्षा अंगीकार करें तो धर्म अधिक दीप उठे। इस पर से किसी भाई ने यह अर्थ निकाला है कि पूज्य महाराज तो धनवानों का पक्ष लेते हैं। किन्तु मेरे कहने का भावार्थ धनवानों का पक्ष लेने या उन्हे बढ़ावा देने का नहीं था।

सुदर्शन की जो कथा आपके सामने उपस्थित करता हूं वह ऐतिहासिक कथा नहीं है किन्तु धर्म कथा है। धर्म कथा का सहारा लेकर जीवन सुधार किया जा सकता है।

नगरसेठ जिनदास के मर जाने पर राजा और प्रजा ने सोचा कि नगर सेठ नहीं रहे। किन्तु वे अपने पीछे एक सुसंस्कारी व्यवहार निपुण योग्यतम पुत्र छोड़ गये हैं। उसी को नगर सेठ बनाना चाहिए।

हमें यह देखना है कि किसी को राजा व प्रजा नगर सेठ क्यों बनाते हैं। नगर सेठ वही बनाया जाता है जो व्यक्ति राजा व प्रजा दोनों का प्रिय पात्र होता है। राजा प्रजा के बीच में मध्यस्थ का काम करता हो। अगर राजा को कोई काम प्रजा से करवाना हो अथवा प्रजा को अपना कोई कार्य राजा के द्वारा करवाना हो तो नगर सेठ के मार्फत एक दूसरे के पास संदेश पहुंचाया जाता है। नगर सेठ सहुलियत से दोनों के कार्य सिद्ध करवा देता है। अपनी बुद्धिमत्ता व कार्य कुशलता के कारण नगर सेठ राजा व प्रजा दोनों का आदरणीय होता है।

आजकल तो लोग रायबहादुर सर नाईट आदि उपाधियां लेकर खराब कानून बनवाने में विदेशी सरकार की सहायता करते हैं। प्रजा के कष्ट मिटाने के बजाय प्रजा के कष्ट बढ़ाने में मददगार होते हैं। कई लोग प्रजा द्रोही कार्य करके राजा से उपाधियां लेते हैं। इसके विपरीत पुराने जमाने

का नगर सेठ राजा और प्रजा के बीच का पुरुष होता है। दोनों का विश्वास पात्र होता है। दोनों का धर्म जानता है और दोनों को धर्म पर दृढ़ करता है। वह राजा द्वारा प्रजा को कष्ट नहीं होने देता। अपने प्राणों की आहुति देकर भी वह प्रजा की रक्षा करता है। प्रजाहित के लिए राजा द्वारा बनाये हुए नियमों का प्रजा द्वारा वह भंग नहीं होने देता यदि प्रजा हित के लिए राजा कोई कानून बनाता है तो नगर सेठ राजा का साथ देकर प्रजा से वह कानून मनवाता है। राजा व प्रजा दोनों को प्रसन्न रखने का कार्य कितना कठिन है यह कोई अनुभवी ही समझ सकता है।

मुझे इधर का हाल ज्ञात नहीं है। किन्तु उदयपुर (मेवाड़) का एक उदाहरण आपके सामने रखता हूं। वहां आपके सहधर्मी प्रेमचन्दजी नामक एक व्यक्ति रहते थे। उनकी आर्थिक हालत साधारण थी किन्तु वे थे सत्य पर दृढ़ रहने वाले व्यक्ति। किसी की लाग लपेट में आने वाले न थे। गोद आने से पहले भावी राणा स्वरूपसिंहजी बागोर की हवेली में रहते थे। प्रेमचन्दजी उनके यहां जाया करते थे और उनका काम काज किया करते थे। प्रेमचन्दजी का काम व स्वभाव देखकर स्वरूपसिंहजी बहुत प्रसन्न होते थे। यह अच्छा आदमी है। यदि मैं मेवाड़ का राणा बन जाऊं तो इसको नगर सेठ बनाऊंगा।

दैवयोग से स्वरूपसिंहजी को मेवाड़ का राज्य मिल गया। प्रेमचन्दजी की योग्यता व गुणों से राणा स्वरूपसिंहजी

परिचित थे। उन्होंने प्रेमचन्दजी को बुलाकर नगर सेठ की पदवी प्रदान करने की बात कही। प्रेमचन्दजी ने कहा कि मैं यह आफत मोल लेना नहीं चाहता। मुझे दिन में तीन घंटे धर्मध्यान करने में लगते हैं। तथा आजीविका के लिए भी समय लगाना पड़ता है। यह राज्य का काम है। जरा जरा सी देर में बुलौआ आ सकता है और वक्त पर हाजिर होना ही पड़ता है। अतः यह कार्य मुझसे न निभ सकेगा।

राणाजी ने कहा कि प्रेमचन्दजी! मैं तुमको बेसमय में न बुलाऊंगा। तुम जो समय बता दोगे उसी समय बुलाया करूंगा। प्रेमचन्दजी ने कहा—यह तो अच्छी बात है। किन्तु अभी मैंने ऐसा कोई खास काम नहीं किया है। न प्रजा मुझे जानती ही है। प्रजा का मेरी तरफ कोई आकर्षण भी नहीं है। अतः अभी यह पद ग्रहण करना वाजिब नहीं मालूम देता। यह तो आपकी महरबानी के किराये स्वरूप पद गिना जायगा। राणा ने सोचा यह ठीक ही कहता है। पहले इससे कोई अच्छा कार्य कराना चाहिये फिर पद देंगे। राणाजी इसी चिन्ता में थे कि कोई कार्य इसके हाथों से हो।

उस समय उदयपुर में जो नगरसेठ थे वह बहुत धनवान थे। साधारण धनवान् न थे। किन्तु इतने धनवान थे कि कभी कभी राणाओं को कर्ज लेने के लिए उनके यहां मेवाड़ तक गिरवी रखनी पड़ती थी। उन्हीं दिनों राणाजी की माता स्वर्गस्थ हो गई। माता का मोसर किया गया। राणाजी ने नगर सेठ को बुलवाकर कहा कि लड्डू बांधने के लिए

शहर के लोगों को बुलवाओ। नगर सेठ ने कहा कि सिपाही भेजकर बुलवा लीजिये। बनिये लोग सीधी तरह नहीं आया करते। राणाजी ने यही कार्य प्रेमचन्दजी को सौंपा। प्रेमचन्दजी शहर के महाजनों से कहने लगे कि राणाजी की माता का मोसर है। लड्डू बंधवाने हैं। आप लोग चलिये। ऐसा अवसर कब आया करता है। प्रेमचन्दजी के आदर्श वर्ताव से सब महाजन लड्डू बांधने के लिए आ गये। महाजन कहने लगे नगर सेठजी तो हम लोगों को हलकारे से बुलाया करते थे। यह तो स्वयं बुलाने के लिए आये। वास्तव में नगर सेठ होने लायक प्रेमचंदजी ही हैं।

लोगों की मनोभावना समझकर राणा ने प्रेमचन्दजी को नगर सेठ बना देने की बात कही। किन्तु प्रेमचन्दजी बोले-महाराना साहिब ! मैं गरीब आदमी हूं। अपने घर का गुजारा चलाऊं या नगर सेठाई करूं। राणा द्वारा दस हजार की जागीरी प्रदान करने की बात कहने पर भी प्रेमचन्दजी ने कहा इस तरह जागीरी लेकर मैं आपका गुलाम बन जाऊंगा। खरी बात न कह सकूंगा। प्रजा की भलाई का ध्यान न रख सकूंगा। राणा ने कहा बिना कुछ लिए ही सही, पर पदवी तो ले लो। मैं तुम्हारी आर्थिक दशा का खयाल रखूंगा। प्रेमचन्दजी नगर सेठ घोषित कर दिए गये।

एक बार प्रजाहित की बात को लेकर राणाजी और नगर सेठजी में अनबन हो गई। नगर सेठजी शहर के सब लोगों के साथ हिजरत कर गये-शहर छोड़कर बाहर चले

गये। राणाजी का पाखाना साफ करने के लिए महतरों तक ने इन्कार कर दिया। कहा कि नगर सेठजी के हुक्म के विना हम लोग पाखाना न झाड़ेंगे। पानी भरनेवाले भिश्ती भी इन्कार हो गये सारी प्रजा ने राणाजी का वायकाट कर दिया। पहले जमाने में भी अपनी वात न मानने पर प्रजा राजा का राज्य छोड़कर वाहर चली जाया करती थी। यह सत्याग्रह का एक रूप था। अखीर राणाजी को प्रजा के सामने झुकना पड़ा। सारी प्रजा को स्वयं मनाकर लाये। नगर सेठजी प्रजा-हित की कुछ वातें राणाजी से लिखितरूप में मनवाकर फिर शहर में आये।

कहने का मतलव यह है कि नगर सेठ राजा और प्रजा के वीच का आदमी होता है। उसकी जिम्मेवरी महान् होती है। सुदर्शन सेठ को भी राजा और प्रजा दोनों ने सह-मत होकर नगर सेठ वनाया है। सुदर्शन सोचता है—यह पद तो मैंने ग्रहण कर लिया है किन्तु इसकी जिम्मेवरियां निभाना बड़ा कठिन है। अधिकारी वनना सरल है किन्तु उसकी जिम्मेवरी निभाना कठिन है। जो अधिक काम करे वह अधिकारी है।

अधिकाधिकं कार्यंकरोतीति अधिकारी

जो अधिक कार्य न करके कोरा नाम मात्र का अधिकारी वन जाता है उसके लिए अधिकारी शब्द का प्रथम अक्षर अ निकाल दिया जाय तो वह धिक्कारी वन जाता है। वह

धिक्कार का पात्र रह जाता है। अधिकार पाकर जो आलस्य या ऐशो आराम में समय बिताकर कर्त्तव्यच्युत हो जाता है वह धिक्कार का ही पात्र होता है।

सुदर्शन भी यही विचार के अपना कर्त्तव्य निश्चित करने के लिए बाग में जाकर विचारणा करने लगा। उद्यान में बैठकर वह क्या देखता है कि एक लता वृक्ष पर चढ़ी हुई है। उस लता में फूल खिले हुए हैं फूलों पर भ्रमर मंडरा रहे हैं और रसास्वादन कर रहे हैं। यह देखकर सुदर्शन बहुत प्रसन्न हुआ। और कहने लगा—ए लता और वृक्ष! तुम मुझको क्या शिक्षा देना चाहते हो! ऐसा मालूम होता है कि तुम मेरे हृदय के सारे असमंजस को मिटाये डालते हो!

लता पृथ्वी से निकल कर झाड़ पर चढ़ती है। वह पृथ्वी और पानी के पुद्गलों को ग्रहण करके अपना पोषण करती है। खुदका पोषण करके उन परमाणुओं को पुष्प के रूप में जगत् के सामने प्रकट करती है। पृथ्वी में गन्ध है। गन्धवती पृथ्वी कही जाती है। लता पृथ्वी में से गन्ध ग्रहण करती है और उस गन्ध को फूल के रूप में प्रकट करती है। पृथ्वी की गन्ध को लेकर लता फूल बनाती है। यदि मिट्टी का ढेला लेकर सूंघा जावे तो वैसी खुशबू नहीं आती जैसी एक पुष्प में आती है। प्रकृति की अजब लीला है कि एक लता आकर्षण से पृथ्वी में से गन्ध को खींच लेती है और सुन्दर पुष्प के रूप में पेश करती है। लता गन्ध लेकर फूल को देती

है और फूल भी अपनी महक स्वयं नहीं भोगता किन्तु भ्रमर को देता है। वृक्ष लता को आधार देता है इसलिए यह कहने का अधिकारी है कि लता के पुष्पों को मैं स्वयं ही भोगूं, दूसरों को नहीं भोगने दूंगा। किन्तु वृक्ष ऐसा नहीं करता।

लता और वृक्ष मधुमक्खियों से कहते हैं—ओ मधु-मक्खियों! आओ हमारे रस को ग्रहण करो और शहद बनाओ। हमारे रस का दुरुपयोग मत करना किन्तु मधु बनाना मधुमक्खियां भी शहद बनाकर स्वयं नहीं भोगतीं। वे तो अपना कर्त्तव्य पूरा करती हैं। शहद के उपभोक्ता कोई और ही होते हैं।

वृक्ष, लता, पुष्प और मधुमक्खियों के कार्य देखकर सुदर्शन सोचता है कि कहां ये क्षुद्र जीव और कहां मनुष्य? कितना अंतर है। एक परोपकारार्थ अपना निर्माण करते हैं और दूसरे उसका उपभोग कर के दूसरों को सताते हैं। हमें जो सम्पत्ति मिली है वह दुरुपयोग करने के लिए अथवा विषय वासना में लगाकर खराब करने के लिए नहीं मिली है। सम्पत्ति का परोपकारार्थ सदुपयोग करना चाहिए। यदि लता और मधुमक्खियों से शिक्षा ग्रहण करके अपनी सम्पत्ति का उपयोग जनकल्याण के लिए न करूंगा तो मैं भी धिक्कार का पात्र होऊंगा। इस सम्पत्ति और पदवी की शोभा तभी है जब मैं भी लता की तरह दूसरों के लिए अपने आपको समर्पित करदूं। दूसरों से जो कुछ लूं वह अपने ही लिए न रखकर

फूल की तरह उसका विकास कर सज्जनों का पोषण करूं।

मुझे राज्य सत्ता का आधार मिला है। इस सत्ता का उपयोग दूसरों को सताने के लिए न करूं बल्कि दूसरो की आपत्तियां हल्का करने में करूं। अपनी बुद्धि रुपी बेल को सत्ता रुपी वृक्ष पर चढ़ाकर शक्ति रुपी पुष्प से सब को सुगन्धित करूं। अपनी शक्ति का प्रयोग दूसरों की आत्मा को शितीभूत करने में करूं। अपना व्यापार धंधा या लक्ष्मी की वृद्धि करने में ही न करूं। इस प्रकार सुदर्शन लता को देखकर अपना असमंजस मिटा रहा है। उसे अपना कर्त्तव्य स्पष्ट मालूम दे रहा है।

मित्रों! आप लोग भी दूसरों से लेते हो तो दूसरों को देने की भावना भी रक्खो। लता से यह गुण सीखो। अपनी शक्ति का उपयोग दूसरों की भलाई के लिए करोगे और देना सीख लोगे तो कल्याण है।

२-८-३६

राजकोट

५

परोपकार ही जीवन का सार है

श्रीमुनि सुव्रत सायबा, दीन दयाल देवांतणा देव के;
तरण तारण प्रभु मो भणी, उज्ज्वल चित्त समरूं नित्य मेव के।
श्री मुनिसुव्रत सायबा ॥१॥

प्रार्थना

यह वीसवें तीर्थङ्कर भगवान् मुनिसुव्रत स्वामी की प्रार्थना है। भक्त कहता है कि इस अखिल संसार में परिभ्रमण करते अनन्त काल व्यतीत हो गया फिर भी मेरा निस्तार नहीं हुआ इस विश्व में परिभ्रमण करते हुए मुझे अपने अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि परमात्मा की शरण में अपने आप को सौंप देना भवसागर से पार उतरने का एक मात्र सच्चा उपाय है। संसार रूपी महासमुद्र से पार उतरने के लिए ईश्वर का संस्मरण नौका के समान है। मुझे भी परमात्मा की शरण में

जाने और उसका स्मरण करने का कई बार विचार आता है। किन्तु उसकी शरण में किस प्रकार जाना और किस प्रकार उसका संस्मरण करना चाहिए यह बात समझ में नहीं आती। इसका उपाय इस प्रार्थना में बताया है। कहा है:—

उज्जवल चित्त समरूं नितमेव के

हे प्रभो! मैं उज्ज्वल चित्त से नित्य तेरा स्मरण करता रहूं। ईश्वर का रटनमात्र-स्मरण करना दूसरी बात है। और उज्ज्वल चित्त से स्मरण करना और बात है। मन हृदय और बुद्धि को साफ बनाये विना परमात्मा की झांकी नहीं हो सकती। जिस प्रकार साफ आईने में मुख देखा जा सकता है उसी प्रकार शुद्ध हृदय में परमात्मा के दर्शन हो सकते हैं। जिस हृदय में पाप रुपी कालिमा लगी हो उसमें प्रभु दर्शन संभव नहीं है अतः हृदय को, चित्त को उज्जवल बनाना प्रथम आवश्यक है। चित्त में रहे हुए विषय विकारों को निकाल फेंकना प्रभुदर्शन की आवश्यक शर्त है। जिस चित्त में हे भगवन्! आपको स्थान देना चाहिए, वह न देकर, मैंने काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ आदि विकारों को स्थान दे रखा है।

अन्तर्यामी ! तेरी शरण में जाने और तेरा
के जो साधन हैं वे अन्य कामों में रुके हुए
तो यह हूं कि कान तेरे भजन सुने, तेरी वाणि
किन्तु होता यह है कि दूसरों की निन
उन्हें फुरसत नहीं मिलती। आंखों से
नीहारना चाहता हूं।

'जहां देखूं वहीं पर नूरे खुदा,
कोई और तो आता नजर ही नहीं'

जिधर देखूं उधर हे प्रभो! तेरा ही नूर देखूं, यह चाहता हूं। किन्तु आंखें ऐसा नहीं करती। वे अलंकारों से विभूषित नवयौवना नारियों को देखने के लिए जितनी उत्सुक रहती हैं उतनी तेरे दर्शन के लिए लालायित नहीं रहती। नाक के सम्बन्ध में भी यही बात है। मैं अपनी नाक ऊंची रखना चाहता हूं। किन्तु जिन सुकृत्यों के करने से नाक ऊंचा रहता है वे न करके नाक कटने के काम करता हूं। जिह्वा से तेरे गुणगान करना चाहता हूं। किन्तु ऐसा न करते हुए जिव्हा विविध-व्यंजनों का स्वाद लेंने और दूसरों की निन्दा करने के लिए लगी रहती है। जिव्हा परनिन्दा करने में और हलुवा पूड़ी खाने में शूरी है। अथवा वाग्वाण बरसाने में अपनी शक्ति का उपयोग करती है।

शरीर की तरफ देखता हूं तो उसकी भी हालत अपने सहयोगियों से कम नहीं है। दूसरों की भलाई के काम करने में तो शरीर को आलस्य आ जाता है, मौत आने लगती है। किन्तु यदि किसी से लड़ाई करनी हो तो न मालूम उसमें कितनी स्फूर्ति आजाती है। पांव किसी दुःखी दर्दी की सेवा करने के लिए तो नहीं उठते किन्तु नाटक सीनेमा देखने के लिए बड़े वेग से दौड़ पड़ते हैं। धर्म कार्य के लिए कहीं जाना हो तो कहते हैं--यह काम तो बुड्ढों का है। किन्तु नीच कार्यों के लिए दौड़ जाते हैं।

हे प्रभो! जिन साधनों से तेरा स्मरण पूजन और भजन होसकता है वे सब साधन अन्य कामों में लगकर रूके हुए हैं। अब एक मन अवशिष्ट रहा है। यदि वह पवित्र रहे तो अन्य सब इंद्रियां भी काबू में आसकती हैं। किन्तु वह भी इन सब से चार गज आगे बढ़ा हुआ है। मैं दूसरों को तो मन पवित्र रखने का उपदेश देता हूं किन्तु मेरे मन में न जाने कितने विकार भरे पड़े हैं। हे घट घट के स्वामिन्! इस प्रकार सारे साधन अन्य बुराइयों में लगे हुए हैं। मैं किस पर तेरा स्मरण करूं और तेरी शरण गहूं।

इस प्रकार देखने पर तो सर्वत्र निराशा के बादल छाये हुए मालूम देते हैं। किन्तु ज्ञानी गुरु कहते हैं—हे जीवात्मन्! तू निराश क्यों होता है। निराशा के बादलों में भी आशा की एक किरण छिपी हुई है। घबड़ाने की कोई जरूरत नहीं है। जिनको तू खराबियां समझ रहा है वे खराबियां ही तूझे परमात्मा के निकट पहुंचाने में निमित्त हो सकती हैं। जो रोगी होता है वही डाक्टर की शरण में जाता है। जो विद्या हीन है वही विद्यालय में पढ़ने जाता है। इसी प्रकार तेरे में ये खामियां हैं इसीलिए तू परमात्मा की शरण में जाना चाहता है। अगर खामियां न होती तो तू परमात्मा का विचार ही क्यों करता। तेने अपनी कमजोरियां जान ली यह भी कम बात नहीं है। कम से कम तू खराबी को खराबी तो मानता है। बुराई को भलाई तो नहीं कहता। तेरी बुद्धि सम्यक् है कि तू बुरे को बुरा और अच्छे को अच्छा मानता है। तू

हेयोपादेय का ज्ञान रखता है। अतः तेरा उद्धार होना संभव है। और इसीलिए तू परमात्मा की शरण में जाना चाहता है।

पूरव अशुभ कर्त्तव्यता तेहने है प्रभु तूं न विचार के।
अधम उद्धारण विरुद है शरण आयो अब कीजे सहाय के॥

हे प्रभो! मैं अपने कार्यों की तरफ देखता हूं तो तेरी शरण में आने लायक अपने को नहीं पाता। लेकिन तू पतितों का उद्धारक है, निराधारों का आधार है। मैं अधम हूं, पतित हूं, और निराधार भी। अतः तेरे विरुदों का ख्याल करके तेरी शरण में आया हूं सद्गुरु के वचनों पर विश्वास लाकर तेरी शरण चाहता हूं। भगवन्! संसार सागर से मेरी नैया पार उतारो।

जिस प्रकार सर्प से डसा हुआ व्यक्ति अपना जहर उतरवाने के लिए किसी जानकार मंत्रवादी के पास पहुंचता है। उसी प्रकार मैं भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि सर्पों से डसा हुआ हूं। सर्प का विष तो शरीर तक ही कायम रहता है मरने पर अपने आप खत्म हो जाता है। किन्तु काम, क्रोध का विष अनेक जन्म जन्मान्तर तक अपना असर कायम रखता है। इन जहरीले विषों से अपना पिण्ड छुड़ाने की मुझे चटपटी लग रही है अतः प्रभो! मैं तेरी शरण में आया हूं। मुझे इन शैतानों से बचाओ। मेरा उद्धार करो। मेरी रक्षा करो।

धर्म प्रेमी सज्जनों! आप लोग भी कुछ चेतेंगे या गहरी नींद में ही सोये पड़े रहेंगे। आप लोगों को समझना चाहिए कि धर्म स्थान में क्या आये हैं, प्रभु की गोद में आये हैं। अतः प्रमाद रखना उचित नहीं है। कोई आदमी राजा की गोद में बैठा हो तो क्या वह नींद लेगा या स्फूर्ति रखेगा। इसी प्रकार धर्मस्थानक में आकर आलस्य प्रमाद छोड़ कर प्रभु से लौ लगानी चाहिए। कहना मेरा काम है, करना आपका काम है।

शास्त्रः—

यही बात शास्त्र के जरिये समझाता हूं। अनाथी मुनि श्रेणिक राजा से कहते हैं कि राजन्! तुझे यह अभिमान है कि 'मैं नाथ हूं'। किन्तु इस अभिमान को त्याग कर अपने को अनाथ मान। जो अपने को अनाथ समझेगा वही किसी नाथ की शरण में जा सकता है। जो अपने में कोई बीमारी अनुभव करता है वही वैद्य की शरण में जाता है। स्वस्थ व्यक्ति वैद्य के पास क्यों जायगा। मैं अनाथ दशा भोग चुका हूं। उसका जिक्र तुझे सुनाता हूं।

मेरे पिता कौशाम्बी नगरी में रहते हैं। वे प्रचुर धन-संचयी हैं। प्रचुर धन-संचयी वह है जिसके आश्रय में रहने वाले लोग भी धनवान् हो जावें। जैसे पंडित के साथ रहने वाला मूर्ख पंडित हो जाता है, डाक्टर के पास रहनेवाला अस्वस्थ व्यक्ति स्वस्थ हो जाता है वैसे ही जिसके पास रहने से निर्धन भी धनवान् हो जावे वह प्रभूत धन-संचयी कहलाता

है। यह अर्थ मैं शांकर भाष्य के आधार से कर रहा हूं। मुनि ने यह बताया कि मेरे पिता के आश्रय में रहकर अनेक लोग धनवान् बन गये थे।

इस पर से यह भी बता दिया कि धनवान् पिता का पुत्र होने से मैं स्वयं भी धनवान् था। मुनि की बात सुनकर राजा को विश्वास हो गया कि वस्तुतः कौशाम्बी नगरी बहुत पुरानी नगरी है और उसमें अनेक बड़े बड़े इभ्य सेठ भी रहते सुने गये हैं। अतः उस नगरी के निवासी यह मुनि भी जरूर बड़े धनवान् रहे होंगे। किन्तु राजा का यह संशय तो अभी बाकी ही है कि इतने धनवान् होते हुए भी आप अनाथ कैसे थे। इसको मिटाने के लिए मुनि आगे कहते हैं:—

पढमे वये महाराय अतुला मे अच्छिवेयणा।
अहोत्था विउलो दाहो, सव्वगेसु पत्थिवा ॥ १६ ॥
सत्थं जहा परमतिक्खं, सरीर विवरंतरे।
पविसिज्ज अरी कुद्धो, एवं मे अच्छिवेयणा ॥ २० ॥
तियं मे अंतरिच्छं च, उत्तमंगं च पीडई।
इन्दासणिसमा घोरा, वेयणा परमदारूणा ॥ २१ ॥
उवट्ठिया मे आयरिया, विज्जामंत चिगिच्छया।
अबीया सत्थकुसला, मन्तमूल विसारया ॥ २२ ॥
ते मे तिगिच्छं कुव्वंति, चाउप्पायं जहाहियं।
न य दुक्खा विमोयंति, एसा मज्झ अणाहया ॥ २३ ॥

मुनि कहते हैं—राजन्! यह मेरी अनाथता की कैफियत है। मैं प्रभूत धन संचयी का पुत्र था। मेरा लालन पालन

बड़े प्रेम दक्षतापूर्वक और सावधानी पूर्वक किया गया था। मुझे किसी साधन की कमी न थी। बालकपन में सुख से पला-पोषा। तरुण होने पर युवा स्त्री के साथ मेरा विवाह हुआ। जिनको तू भोग के साधन मानता है वे सब साधन भी थे। फिर भी क्या हुआ सो सुन।

सर्वसाधन होते हुए भी युवावस्था में मेरे शरीर में घोर वेदना हो गई। सबसे पहले मेरी आंखों में वेदना ने प्रवेश किया। आंखे सारे शरीर का सार मानी जाती हैं। आंखों से देखकर के ही सब को पहचाना जाता है। आंखों के अभाव में सर्वत्र अंधेरा है। सूर्य के प्रकाश फैलाने पर भी आंखों के बिना अंधेरा ही है। मेरी आंखों में घोर वेदना शुरू हो गई।

आंखों के होने से मनुष्य अनाथ होता है या सनाथ यह बात अनाथी मुनि के कथन पर से समझने की कोशिश करिये। अनाथी मुनि ने आंखों से अच्छे-अच्छे दृश्य देखे थे। आंखों को दुरुस्त करने के लिए अच्छे-अच्छे पौष्टिक पदार्थ खाये थे और आंखों में अञ्जन भी लगाया था। फिर भी उनकी आंखों में वेदना क्यों हो गई। उनको वेदना के पहले अपनी आंखों का बड़ा अभिमान था। वे समझते थे कि मेरी जैसी लम्बी २ आंखें विरलों की ही होंगी। आंखों का अपने को नाथ मान रहे थे। किन्तु जब वेदना हुई तब सुख का साधन मानी जानेवाली यही आंखें दुःख का कारण बन गईं कहिये आंखों के कारण अनाथी मुनि नाथ रहे या अनाथ?

मुनि कहते हैं—हे राजन् ! मैं आंखों को अच्छी रखना चाहता था। लेकिन मेरे प्रयत्न करने पर भी उनमें घोर वेदना आरंभ हो गई। तब मुझे विश्वास हो गया कि मैं आंखों का नाथ-स्वामी नहीं हूं। आंखें मेरी नहीं हैं। उस समय ऐसा जान पड़ने लगा कि यदि आंखें ही न होती तो अच्छा होता। आंखों को मैं अपनी मानता था। किन्तु वेदना होने पर मुझे अपनी भूल मालूम हो गई।

जो लोग कहते हैं कि 'आंखें हमारी हैं' वे भूल करते हैं। वे आंखों में अपनेपन का आरोप कर लेते हैं। जो वस्तु अपनी होती है वह अपना हुक्म मानती है। किन्तु जो हमारा हुक्म न माने वह वस्तु हमारी कैसे हुई। जो जिसका अपने को नाथ मानता है, यदि वह उसका हुक्म न माने तो वह नाथ कैसा। किन्तु राजन् ! वेदना के पूर्व मैं आंखों का बड़ा अभिमान करता था, वह अब उतर गया।

बंधुओ ! आज संसार में देखते हैं कि लोग जरासी साधन सामग्री पाकर बहुत इतराने लगते हैं। वे अपने को ठगते हैं।

मुखड़ा क्या देखे दर्पण में, तेरे दया धर्म नहीं मनमें।
पगिया बांधे पेंच संवारे, फूल रहा निज तन में।
धन जोवन डूंगर का पानी, ढलक जाय एक छिन में। मुखड़ा।

लोग दर्पण में मुख देखकर अकड़ने लगते हैं। आंख स्वयं अपना मुख नहीं देख सकती अतः दर्पण का सहारा लेना

पड़ता है। जिन आंखों से अपना मुख देखकर आप अभिमान अनुभव करते हैं, क्या सचमुच उन आंखों के आप नाथ हैं? अनाथी मुनि का विवेचन सुन कर यह सोचिये कि 'आंखे हमारी नहीं हैं और न हम आंखों के नाथ हैं' फिर अभिमान किस बात का?

अनाथी मुनि कहते हैं कि मेरी आंखों में घोर वेदना होने के साथ ही साथ मेरे शरीर में भी विपुलदाह होने लगा शरीर के किसी एक अवयव में नहीं किन्तु सारे ही शरीर में अत्यन्त जलन होने लगी। मेरा शरीर इस प्रकार जल रहा था मानो आग पर रखा हो।

कोई व्यक्ति आपके शरीर पर यदि आग रखता है या आपकी आंखों में भाले की नोंक चुभोता है तो आप उसे अपना शत्रु मानेंगे। उसे अपराधी कहेंगे। बाहर से वेदना पहुंचाने वाले को तो आप शत्रु और अपराधी मान लेते हो। किन्तु आपके भीतर ही से वेदना पहुंचाने वाले को क्या कहेंगे? अनाथी मुनी के शरीर में विपुल दाह और आंखों में घोर वेदना कौन पहुंचा रहा था? वह कौनसा शत्रु है? बाहर वाले को तो शत्रु मानते हो। किन्तु अपने शत्रु आप स्वयं बन रहे हो इसका भी कभी खयाल किया है?

मुनि—राजा से कहते हैं—राजन्! यदि कोई मनुष्य किसी की आंखों में भाला खोंचता है या कोई किसी को जलाता है तो क्या तू खड़ा देखता रहेगा या राज्य सत्ता का

उपयोग करके उसको बचायेगा ? और कसूर करने वाले को सजा देगा। राजा ने कहा-मुनिवर! मेरे जीवन में भी ऐसा प्रसङ्ग नहीं आया कि मैं सताये जाते हुए को देखता रहा हूं और आततायी को दण्ड न दिया हो। मुनि ने कहा—राजन्! इन बाहरी शत्रुओं से तू बचाव कर सकता है और उन्हें दण्ड भी दे सकता है। किन्तु मुझ पर भीतरी शत्रु का आक्रमण हुआ था। उससे बचाव करने का तेरे पास क्या उपाय है ?

राजन्! तूने बाहरी शत्रुओं से अपनी प्रजा का रक्षण किया है ? किन्तु तेरी प्रजा कोई रोग व्याप्त हो जाय उसका क्या उपायकिया ? यदि कोई उपाय न कर सका तो नाथ कैसे हुआ ? प्रजा का नाथ होना तो दूर की बात है। तू स्वयं अपना भी नाथ नहीं है। रोग क्या है ? रोग अन्य कुछ नहीं है, स्वयं आत्मा ही रोग है। रोग का मूल कारण आत्मा में निहित है। जब तू अपने भीतर छिपे हुए रोग के मूलकारण को भी नहीं जीत सकता तो तू नाथ कैसे हुआ।

मगधाधिप ! जब मुझे घोर अक्षिवेदना हो रही थी और मैं उस वेदना को मिटाने में सर्वथा असमर्थ था तब तू ही बता कि मैं सनाथ था या अनाथ। जब मुझे अक्षिवेदना हो रही थी तब मेरे कटिप्रदेश में भी शूल चल रहा था। उसी वक्त मेरे मस्तक में भी ऐसी पीड़ा हो रही थी जैसे इन्द्र वज्र मार रहा हो या बिजली गिर रही हो। उस मस्तक में जिसे उत्तमांग कहा जाता है तथा जो ज्ञान का केन्द्रस्थान है

विवश पाकर मैंने यदि कहीं से विष मिल जाय तो उसे खाकर शरीर का ही अन्त करने का विचार कर लिया था। ताकि न रहे बांस न बजे बांसुरी। जब शरीर ही छूट जायगा तो उसके साथ वेदना भी छूट जायगी। किन्तु राजन्! फिर विचार आया कि शरीर के छूट जाने से थोड़ी देर के लिए वेदना तो छूट जायगी किन्तु वेदना का मूल भूत कारण—कर्म तो आत्मा के साथ दूसरे भव में भी मेरा पिन्ड न छोड़ेगा। कारण के मौजुद रहने से इस भव में नहीं तो परभव में वेदनीय कर्म उदय आये विना न रहेगा। अतः कारण का नाश करना ही वेदना मिटने का समुचित उपाय है। बीज के जल जाने पर फिर वृक्ष नहीं ऊग सकता। कारण नाश होने से फिर कभी वेदना नहीं हो सकती। वेदना का कारण वेदनीय कर्म मेरे भीतर विद्यमान है। जब तक वह मौजूद है, शरीर के नाश कर देने पर भी वेदना पूर्ण रूप से मिटी हुई नहीं मानी जा सकती। मुझे भान हुआ कि इस शरीर को अपना मानना ही भूल भरी बात है। और इस शरीर का अभिमान करना तो डबल भूल है। राजन्! मेरी तरह तुझे भी कभी शरीर रोग तो हुआ ही होगा। कारण कि यह शरीर रोग का घर है।

राजा श्रेणिक और अनाथी मुनि अभी नहीं हैं। अभी तो यहां मैं और आप उपस्थित हैं। मैं आपसे पूछना चाहता हूं कि आपको भी शरीर में कभी रोग हुआ होगा। रुग्णावस्था में आपका यह अति प्यारा शरीर आपको कैसा लगा होगा। बुरा लगा होगा किन्तु पूरी तरह बुरा न लगा। यदि पूरी तरह यह शरीर बुरा लगा होता तो आप ऐसा प्रयत्न करते कि

जिससे फिर कभी यह शरीर धारण ही न करना पड़ता। किन्तु कष्ट से छूटने के वाद कष्ट याद ही नहीं रहता। आपके सामने शास्त्र की गंगा वह रही है। इससे लाभ लेकर के भी कुछ अपना आत्म कल्याण करिये।

चरित्र

अव मैं शरीर से मुक्त होकर सदा के लिए कष्टों से छुटकारा पाने वाले की कथा सुनाता हूं

कपिल पुरोहित विविध विद्याधर, सुदर्शन से पाले प्रीत।
लोह चुम्वक सम मिले परस्पर, सरखीं सरखी रीत रे॥ धन॥२१॥

आपके सामने कथा क्यों रखी जाती है इस बात पर पूर्वाचार्यों ने वहुत विचार किया है। साधारण जनता तत्त्वज्ञान की वारीकी नहीं समझ सकती। कथा की सहायता से तत्त्वों की सूक्ष्म विवेचना को स्थूल वनाकर जनसाधारण के लिए सुवोध वनाना, कथा का उद्देश्य होता है। किसी चरित्र नायक का चरित्र सुनाकर उसके जीवन की घटनाओं में आई हुई अनुभव पूर्ण वातों से तत्त्व को समझाना ही कथा का उद्देश्य है। दुसरी वात कथा के द्वारा प्रेम रस की वृद्धि की जाती है। कथा का आधार लेकर विशुद्ध प्रेम की भावना उत्पन्न की जाती है। प्रेम उत्पन्न कर के तत्त्व समझाना ही कथा का लक्ष्य होता है।

जैसे आपने विवाह किया और आपकी पत्नी घर पर आ गई। पत्नी ने फरमाइश की कि अमुक अमुक वस्तुएं मेरे

लिए ला दीजिये। यदि आप उसके प्रेम में बंध गये हैं तो बिना पशोपेश के उसकी आज्ञानुसार सब वस्तुएं ला देंगे। वैसे ही कथा के द्वारा पहले श्रोताओं में धर्मश्रवण के लिए प्रेम-रुचि पैदा करना इष्ट है। फिर धीरे धीरे उनको गहरे तत्त्व समझाने की कोशिश करना और तदनुसार आचरण बनाने का उपदेश देना धर्म कथा सुनाने का उद्देश्य है।

सुदर्शन ने बेल के फूल देख कर यह विचार किया कि जिस प्रकार ये फूल वृक्ष में से रस खींचकर दूसरों के लिए अपनी शक्ति का विकास करते हैं उसी प्रकार मुझे भी अपनी सम्पत्ति और पद का उपयोग दूसरों के परोपकारार्थ करना चाहिए। तभी इनकी सार्थकता है। लता, पृथ्वी पानी और हवा से जो कुछ ग्रहण करती है उसका फूल के रूप में विकास करती है। न लता को आधार देने वाला वृक्ष ही उसका लाभ लेता है। उसका लाभ तो शहद बनाने वाली मक्खियों को मिलता है। आप लोग भी पृथ्वी पानी और हवा से सार ग्रहण करके जीवन धारण करते हो, उसकी एवज में वापस क्या देते हो इसका जरा विचार करो।

क्या आप लोगों ने कभी यह बात सुनी है कि पुष्पों से हवा गन्दी होती है और उससे जगत् में जहर फैलता है? यदि नहीं सुनी तो खुद के लिए विचार करो कि आप अपनी वाणि मन और कर्म के द्वारा जगत् में विष तो नहीं फैला रहे हैं। कठोर व मर्मघाती शब्द बोलकर दूसरों के चित्त को दुःखी तो नहीं कर रहे हैं। मन में गन्दे विचार लाकर हृदय

कलुषित तो नहीं कर रहे हैं। अपने कार्यों के द्वारा लोगों में भय आतङ्क और क्लेश तो नहीं फेला रहे हैं। यदि आप ऐसा करते हैं तो अब भी समय है कि पूर्वकृत कार्यों का पश्चात्ताप करके आयन्दा ऐसा न करने का निर्णय करके अपना आत्म--कल्याण कर सकते हैं।

लता और वृक्ष के कार्यों से शिक्षा ग्रहण करके सुदर्शन अपना कर्त्तव्य अदा करने में लग गया। उसने ऐसी व्यवस्था की कि शहर में कोई भी व्यक्ति नंगा और भूखा न दिखाई देता था। वह निराधार का आधार वन गया था। राजकोट के भूतपूर्व ठाकुर साहिब लाखाजी राज के लिए सुना जाता है कि वे दीन हीन दुःखी जनों के लिए वहुत प्रयत्न करते थे। गरीवों के घरों में पहुंच जाते थे और ऐसा काम करने में भी न हिचकते थे जिसे नौकर तक करने से घबड़ाते थे। जब एक रईस भी गरीवों की सेवा में इस तरह जुटे रहते थे तो क्या आप जिनेन्द्र देव के भक्त और जैन श्रावक नाम धराकर, केवल निजी स्वार्थ में ही मशगूल रहेंगे ? यदि आप निज स्वार्थ में ही लगे रहे तो श्रावक कैसे ? लता वृक्ष और फूल के जीवन से कुछ नसीहत ग्रहण कीजिये और अपना जीवन आदर्श वनाने की कोशिश कीजिये। तब जैन और श्रावक नाम धराना सफल होगा।

पर उपकार का कार्य अपने घर से शुरु करिये। पहले घर के लोगों के सुख दुःख ख्याल करो। फिर पड़ोसी और अपने आश्रित जनों का दुःख दूर करो। यदि कोई व्यक्ति

आश्रय में रहता है और वह दुःखी हो गया है। उसके दुःख को देखकर आपके हृदय में उस दुःख को दूर करने की भावना न पैदा हुई तो आप श्रावक कैसे हुए? आपके आश्रम में रहने वाला कोई भी मनुष्य या पशु दुःखी न रहना चाहिए।

आजकल लोगों ने पशुपालन की जिम्मेवारी अपने ऊपर से हटा दी हो ऐसा मालूम पड़ता है मोल का दूध दही लेकर अपना काम चला लेते हैं और कहते हैं कि ढोर का पालन करके ढोर कौन बने। मैं पूछता हूं कि ढोर का पालन करने से तो आप ढोर बन जाने की बात कहते हैं मगर ढोर का दूध दही खाने से क्या बन जाते हैं? इसका उत्तर दीजिये। यदि ढोरों (पशुओं) का पालन करने से इन्सान ढोर बन जाता है तो आनन्द श्रावक का क्या हाल हुआ होगा। उनके पास चालीस हजार गायें थी। आपके न्यायानुसार तो वह सब से बड़े ढोर ठहरे। जिसकी सहायता से हमारा जीवन निर्वाह होता है उसका पालन पोषण और रक्षण न करके पैसे के बल पर नाचना और गरजना कितना अनुचित है। ऐसा जीवन सच्चा जीवन नहीं गिना जा सकता। केवल लेना ही लेना न सीखो किन्तु कुछ देना भी सीखो।

कल मुनि सीरेमलजी ने आपको मेवाड़ के महाराणा प्रताप का कुछ हाल सुनाया था। राणा ने आधी रोटी से अपने अतिथि का सत्कार किया था। अतिथि का सत्कार पूरी तरह न कर सकने के लिए राणा कितने दुःखी हुए थे। उन्हे यही दुःख था कि मेरे यहां आया हुआ अतिथि भूखा कैसे

जा सकता है। उनकी स्त्री और पुत्री भी कितनी उदार थी। भारत के इतिहास में महाराणा प्रताप का जैसा स्थान है वैसा शायद ही किसी का हो! उदारता रखने से कुछ भी कमी नहीं हो जाती। लाखाजी राजा उदार थे तो क्या उनको कुछ कमी हो गई थी। कृपणता से धन की वृद्धि होती है और दान देने में उदारता करने से धन की कमी होती है, ऐसा खयाल करना नितान्त भूल है। अतः उदार बनो और देना सीखो

सूर्य के उदय से जैसे किसी के घर में अन्धेरा नहीं रह सकता वैसे ही सुदर्शन के रहते नगर में कोई दुःखिया नहीं दिखाई देने लगा। दीपक एक ही घर में प्रकाश फैलाता है। किन्तु सूर्य सब घरों का अन्धकार दूर करके प्रकाश फैलाता है। जो अपने ही कुटुम्ब का पालन पोषण करता है वह मनुष्य है और जो सूर्य की तरह सब लोगों की भलाई करता है वह मनुष्य के रूप देवता है। जो एक घर में प्रकाश करता है वह दीपक है और सर्वत्र प्रकाश करता है वह सूर्य है।

आप लोगों को यदि ऊपरी ढोंग न दिखाकर परमात्मा की सच्ची भक्ति करनी है तो यह मानना पड़ेगा कि जिस मनुष्य में परोपकार की वृत्ति अधिक है उसमें ईश्वरीय अंश है। ऐसे व्यक्ति का आदर सत्कार करना कर्त्तव्य है। उसमें जो सेवा का गुण है उसे ईश्वरीय गुण मानना चाहिए। इसी प्रकार जो परोपकारी या सेवाभावी व्यक्ति है उसे भी अपने से अधिक परोपकारी और सेवाभावी को देखकर उसका आदर सत्कार करना चाहिए और उसके सामने अपने कार्यों को

तुच्छ मानकर और आगे बढ़ना चाहिए। ऐसी उच्च भावना रखने से क्या हिन्दू और क्या मुसलमान सब आनन्द-पूर्वक रह सकते हैं।

सुदर्शन सेठ परोपकार करने में इस प्रकार जुड़ गया कि सर्वत्र उसी की बातें और बड़ाई होने लगी। लोग चर्चा करने लगे कि राजा तो फिर है। हमारे लिए तो यह सेठ ही सब कुछ है यह सेठ हमारा दुःखदर्द सुनकर तत्काल हमारे पास पहुंच जाता है और हमें हर प्रकार से सहायता पहुंचा कर हमारी सेवा करता है गर्मी से तपे हुए व्यक्ति को वृक्ष छाया देकर सुखी बनाता है वैसे ही यह सेठ हमारे अभावों को दूर करके हमें आनन्दित करता है।

वृक्ष तपे हुए लोगों को छाया प्रदान करके किस प्रकार आनन्दित करते हैं इस बात का अनुभव आप लोगों को क्या होगा। आप जूते पहन कर छाता लगा कर या रेल मोटर में बैठकर चलते हैं और मौका लगने पर आकाश में उड़कर भी जाते हैं। इस बात का अनुभव तो हम साधु लोगों को है, जो नंगे पैर बिना छाता लगाये वैशाख जेठ की कड़ी धूप में चलते हैं। हमारे लिए तो अब भी चौथा आरा वरत रहा है। आज के ये साधन-रेल मोटर और हवाई जहाज हमारे क्या काम के जब हम लोग चार छः कोस का विहार करके एक ग्राम से दूसरे ग्राम में जाते हैं तब मार्ग में कड़ी धूप से तपे हुए हम लोगों को वृक्ष की घनी छाया कैसी लगती होगी। आप छाता लगाने की बात कहेंगे तो वह हमें नहीं कल्पती है। किन्तु वृक्ष की छाया का आश्रय लेने में हमें कोई रुकावट नहीं है। इस प्रकार वृक्ष तपे हुए को अपनी छाया देकर आनन्दित करता है।

जो वृक्ष ताप से तप्त प्राणी को छाया देकर सुखी नहीं बनाता वह वृक्ष कैसा। उसका होना निरर्थक है। जो आदमी दूसरों की सहायता नहीं करता वह भी पृथ्वी पर भार भूत प्राणी है। वृक्ष की तरह सुदर्शन भी सब को छाया—आश्रय देता था। वह सोचता था कि अपने पास आये हुए को यदि मैंने शांति नहीं पहुंचाई तो मेरा मनुष्य जन्म धारण करना वृथा है। वह इन्सान ही क्या जो दूसरों के काम न आये। सुदर्शन की परोपकार वृत्ति की सर्वत्र प्रशंसा होने लगी।

उसी चम्पानगरी में कपिल नाम का एक पुरोहित रहता था। वह वेद वेदांग दर्शन न्याय व्याकरण आदि में पारंगत था। नगर के लोगों में उसकी अच्छी प्रतिष्ठा थी। सब उसकी कृपादृष्टि के इच्छुक थे। उसने सुदर्शन के यश की गाथा सुनी। उसके मन में हुआ कि ऐसे गुणी आदमी की मित्रता लाभदायक होती है अतः किसी तरह सेठ से प्रीति करनी चाहिए।

दुनिया का यह साधारण नियम है कि समान स्वभाव वालों की ही आपस में दोस्ती होती है। संस्कृत में कहावत है कि—

'समान शील व्यसनेषु मैत्री'

जिन लोगों का स्वभाव मिलता है और जो समान व्यसन-आदत वाले हैं उनका परस्पर दोस्ताना होना स्वाभाविक है। गुणी गुणी की तरफ खिंचता है और दुर्गुणी दुर्गुणी की तरफ। बीड़ी पीने वाले की दोस्ती बीड़ी पीने वाले

से भंग पीने वाले की भंग पीने वाले से शरावी की शरावी से और दुराचारी की दुराचारी के साथ मित्रता होना स्वाभाविक है। इसी तरह धर्मी की दोस्ती धर्मात्मा से होती है। सामायिक पौपधोपवास आदि करने वाले की मित्रता ये कार्य करनेवाले के साथ हो जाती है। उदार व्यक्ति की दोस्ती उदार व्यक्ति से होती है। मतलव कि समानशील और व्यसन वालों की आपस में दोस्ती होना संभव है।

कपिल पुरोहित ने अनेक प्रयत्न करके सुदर्शन सेठ से मुलाकात की। सेठ सुदर्शन इतना सज्जन आदमी था कि हर किसी से मिलने व मुलाकात करने के लिए सदा तय्यार रहता था। कपिल ने तो प्रयत्न पूर्वक भेंट की थी अतः उससे मिलने और प्रीति करने में सेठ को क्या आपत्ति हो सकती थी। सेठ गुणीजनों से तो प्रीति करते ही थे किन्तु दुर्गणियों से भी उनके दुर्गुण मिटाने की भावना से प्रेम करते थे। उनके साथ मेलजोल रखते थे। प्रीति करके दुर्गुण किस प्रकार छुड़ाये जाते हैं; यह वात एक कथा द्वारा वताता हूं।

एक बार मगध देश के राजा श्रेणिक ने अपने राज्य में 'अमरपड़ह' फिरवाया कि कोई भी व्यक्ति मेरे राज्य में किसी जीव को न मारे। यह आज्ञा सुनकर कालकसूरी कसाई कहने लगा कि किसी जीव को न मारने की वात कहने वाला शास्त्र झूठा है। सच्ची वात तो कत्ल करना है। उसने राजा से कहा कि कत्ल करने की वात सच्ची न हो तो आप अपनी तलवार छोड़कर फिर अपनी आज्ञा मनवाइये। तव आपको

पता लगेगा कि मेरी बात कितनी ठीक है। लोग तलवार के भय से ही आपका हुक्म मानते हैं और राज्य चलता है। राजाने कहा–अपराधी को मारना दूसरी बात है और निर-पराधी का कत्ल करना दूसरी बात है। कालकसूरी कसाई ने कहा–ऐसा नहीं है। जिस प्रकार तलवार चलाने से आपकी रोजी चलती है उसी प्रकार जानवरों का कत्ल करने से मेरी रोजी चलती है। मैं अपनी रोजी किस प्रकार छोड़ दूं।

राजाने सोचा, यह सीधी तरह हुक्म मानने वाला नहीं है। अतः सिपाहियों को आज्ञा देकर उसे जेल में बन्द करवा दिया। कालकसूरी कसाई जेल में पड़ा हुआ भी अपने शरीर से मैल उतारकर उसके भैंसे बनाकर अपने नाखून से तलवार की तरह उन पर घाव करता जाता और गिनता जाता था कि एक दो तीन। उसकी चिल्लाहट सुनकर राजा ने सिपाहियों से पूछा कि कालकसूरी कसाई एक दो तीन आदि क्यों चिल्ला रहा है। सिपाहियों ने उत्तर दिया कि महाराज! जिस काम से रोकने के लिए आपने कालकसूरी कसाई को जेल में बन्द करवा रखा है वही काम वह जेल में बंदी बन करके भी कर रहा है। अपने शरीर के मैल से भैंसे बनाकर मार रहा है। और मारते मारते उनकी गिनती करता जा रहा है। उसीकी यह चिल्लाहट है।

सिपाहियों से यह हकीकत सुनकर राजाने अपने पुत्र तथा मंत्री अभयकुमार को बुलवाकर कहा कि किसी तरह इस काल कसूरी कसाई से हिंसा करना छुड़वाओ। इसको किस

प्रकार सुधारें। यह मानता ही नहीं है। अभयकुमार ने कहा कि महाराज! इसके संस्कार ही ऐसे पड़े हुए हैं। जेल में बंद कर रखने से इसके विचार या संस्कार थोड़े ही सुधरेंगे। इन संस्कारों को मिटाकर इनके स्थान में दूसरे अच्छे संस्कार डालना और सुधार करने का मार्ग भिन्न है। देखिये, मैं किस प्रकार संस्कार सुधार कर आदत सुधारता हूं।

यह कहकर अभयकुमार ने कालकसूरी के पुत्र सुलक से मित्रता शुरू की। मित्रता ऐसी की कि एक आत्मा दो देह जैसी। अभयकुमार की मैत्री के प्रभाव से सुलक धर्मी वन गया। उसने कसाई का धंधा छोड़ दिया और दूसरा धंधा करने लग गया। अभयकुमार ने राजा से कहा कि महाराज! कालकसूरी तो नहीं सुधरा मगर उसके पुत्र को बुलवा कर देखिये कि वह कितना सुधर गया है। राजाने सुलक को बुलवाकर पूछा कि आजकल तेरी आजीविका किस प्रकार चलती है। तेरे पिता तो जेल में वंद है। सुलक ने उत्तर दिया कि जीवों को मारकर मांस बेचने से ही आजीविका चल सकती है यह धारणा झूठी है। यों तो चोर भी कहता है कि चोरी छोड़ देने से मेरा निर्वाह किस प्रकार होगा। किन्तु चोरी करना कोई धंधा नहीं है इसी प्रकार मूक पशुओं का कत्ल करना कोई धंधा है? महाराज! मैं इस निर्णय पर पहुंचा हूं कि किसी जीव को सताये बिना भी आजीविका चलाई जा सकती है। मैं इसी प्रकार अपनी जीविका चलाता हूं।

सुलक की वात सुनकर राजा वहुत प्रसन्न हुआ। और

मन ही मन अभयकुमार के बुद्धिचातुर्य की प्रशन्सा करने लगा। अभय ! तुमने सुलक के संस्कारों को बदल दिया। यह बड़ा भारी काम किया है। अभयकुमार ने कहा–महाराज अब इसके पिता को जेल से मुक्त कर देना चाहिए। कालकसूरी जेल से छोड़ दिया गया। जेल मुक्त होकर अपने घर पर आकर कालकसूरी बहुत नाराज हुआ। क्योंकि उसकी गैर हाजरी में उसका लड़का बिगड़ गया है। और उसने अपना परंपरागत व्यवसाय छोड़ दिया है। जब कालकसूरी मरण शय्या पर पड़ा हुआ था तब वह अपने बेटे सुलक को बुलाकर कहने लगा कि पुत्र ! मेरे प्राण शांति से नहीं निकल रहे हैं। मुझे इस बात की चिन्ता है कि तू मेरे पश्चात् मेरा धंधा न करेगा। पुत्र ! मुझे वचन दे कि तू मेरा धंधा चालू रखेगा।

सुलक ने वचन दे दिया कि आपके बाद मैं जीविका के लिए धंधा चालू रखूंगा। कालकसूरी ने शरीर छोड़ दिया। सुलक विचारने लगा कि अभयकुमार ने कहा वह बात सत्य है। जो संस्कार पड़ जाते हैं वे मरने के समय तक भी नहीं छूटते। और इसी कारण जैसी मति होती है वैसी ही गति भी होती है। आयुष्य बंधने के पूर्व तो जैसी मति होती है वैसी गति होती है। किन्तु मरने पर जैसी गति होती है वैसी मति हो जाती है।

कालकसूरी के मरने के बाद सुलक को उसके कुटुम्बी जनों ने पिता को दिए हुए वचन की याद दिलाकर कसाई का धन्धा करने की बात कही। सुलक ने स्पष्ट कह दिया कि

मैंने धंधा करने का वचन दिया है न कि जीवों को मारकर धंधा करने का। कुटुम्बियों ने कहा कि सुलक ! अपने पूर्वजों का धंधा करो। जीवों की घात से जो पाप होगा उसका फल हम भोग लेंगे। तुम धंधा करो।

इस पर से सुलक ने अपना हाथ एक छुरी से थोड़ा काट लिया और कुटुम्बियों से कहा कि मुझे घोर वेदना हो रही है। आप लोग मेरा दर्द ले लो और मुझे सुखी बनाओ। कुटुम्बी लोग कहने लगे कि स्वयं तो छुरी से अपना हाथ काट डाला और वेदना होने के वक्त हम से वेदना ले लेने की बात कहते हो। यह कैसे हो सकता है कि तुम्हारी वेदना हम ग्रहण करलें। वेदना तो जिसे होती है उसी को भोगनी पड़ती है। तब सुलक ने कहा कि इसी प्रकार यदि मैं हत्याएं करूंगा तो हत्या जन्य पाप के फल भी मुझे ही भोगना पड़ेगा। आप लोग मेरे पाप के फल को नहीं भोग सकते। पाप जो करता है फल उसी को भोगना पड़ता है। मेरे समक्ष भी तुम लोग मेरी वेदना में भाग नहीं बंटा सकते तो पर लोक में जब मैं हत्या का फल भोगूंगा, कैसे मेरे हिस्सेदार बनोगे। फल उसे ही भोगना पड़ता है, जो कर्म करता है।

भाइयों ! कई लोग अपने कुटुम्बियों के लिए न करने लायक कार्य कर डालते हैं न्याय और अन्याय से उनके पोषणार्थ धन उपार्जन करते हैं। अने[illegible] र से दगाबाजी फरेबी करके येन केन प्रकारेण [illegible] के अपने कुटु[illegible] को प्रसन्न करने की चेष्टा कि[illegible] भवतः उ[illegible]

ख्याल हो कि हम जो पाप करते हैं वह अपने लिए थोड़ा ही करते हैं। हम तो अपने परिवार के लिए करते हैं अतः जो कुछ पाप होगा वह परिवार वालों को लगेगा। किन्तु यह धारणा गलत है। पाप तो करने वाले को ही लगता है। क्रिया का फल कर्त्ता को ही होता है। जो क्रिया नहीं करता उसको फल कैसे मिल सकता है। यह सिद्धान्त है कि आत्मा स्वकृत कर्म का फल पाता है परकृतका नहीं। कहा--

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा।
फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्॥
परेण दत्तं यदि लभ्यते शुभं।
स्वयं कृतं कर्म निरर्थकं तदा।

जीवात्मा ने शुभ या अशुभ जैसा भी कार्य किया है उसका फल उसे खुद ही भोगना पड़ता है। यदि दूसरे के द्वारा किये हुए का फल भोगना पड़े तब तो स्वयं कृत कर्म निरर्थक हो जायगा। अतः जो कुछ करो सोच समझ कर करो। फल भोगने की तय्यारी के साथ करो। अपने मन में गलत धारणा कर लेने से फल से छुटकारा न हो सकेगा।

सुलक के कुटुम्बियों ने कहा कि तब तुम अपने पिता को दिये हुए वचन से विमुख हो गये हो। सुलक ने कहा कि मैं यह नियम लेता हूं कि अपने कुटुम्बियों को खिलाने के पूर्व खाना न खाऊंगा। इस तरह उसने अपना वचन भी निभाया और हिंसाकार्य भी छोड़ दिया।

अभयकुमार ने सुलग को सुधारने के लिए उससे दोस्ती की थी न कि उसके दुर्गुण अपने में लेने के लिए। सुदर्शन ने भी कपिल से इसी भावना से दोस्ती की है कपिल के कारण सुदर्शन की किस प्रकार परीक्षा होती है इसका विचार आगे है।

७-८-३६

राजकोट

६

सूक्ष्म संस्कारों की करामात

विजयसेन नृप विप्रा राणी, नमीनाथ जिन जायो,
चौसठ इन्द्र कियो मिल उत्सव, सुरनर आनन्द पायो।
सुज्ञानी जीवा भज़लेरे जिन इकवीस मा ॥ १ ॥

प्रार्थना

यह इक्कीसवें तीर्थङ्कर भगवान नमीनाथजी की प्रार्थना है। भक्तलोग संसार के लोगों को आमंत्रण देते हैं कि हे सुज्ञानियो! दुनियादारी के सब काम छोड़कर परमात्मा का भजन करो। परमात्मा के स्मरण में लग जाओ और उसके भजन करो।

अब प्रश्न यह खड़ा होता है कि परमात्मा की प्रार्थना या भजन करने के लिए सुज्ञानी जीव को क्यों आमंत्रिन किया गया। जो ज्ञानी जीव हैं वे तो विना किसी की सिखामण के परमात्मा के भजन ही करेंगे। जो चल रहे हैं, उनको चलने के लिए क्यों कहा जाय। चलते हुए बैल को आरी क्यों लगाई जाय। इसका उत्तर भक्त लोग देते हैं कि क्या अज्ञानी जीवों को प्रभु भजन का आमंत्रण दिया जाय? यदि अज्ञानी जीवों को भजन करने का आमंत्रण दिया जाय तो वह व्यर्थ हो जाता

है। अज्ञानी जीव अपने अज्ञान के कारण प्रभु भजन की बात सुनेंगे ही नहीं। यदि सुन लेंगे तो भजन करने की उनकी इच्छा ही न होगी। अतः ज्ञानियों को सम्बोधित किया है कि आओ परमात्मा के गुणगान करो। ज्ञानी को दिया हुआ उपदेश सार्थक होता है।

यह आत्मा की मूल दशा का कथन है। प्रत्येक जीवात्मा मूल दशा में सुज्ञानी है। निश्चय नय की दृष्टि से हर एक जीव सिद्धात्मा के समान है। जीव में अज्ञान विकारी प्रकृति के कारण है। वास्तव में तो जीव सुज्ञानी ही है। मूलदशा को ध्यान में रखकर सब को सुज्ञानी कहा गया है।

कर्मजन्य फल को अपना मानना ही आत्मा का अज्ञान है। इसके विपरीत कर्मजन्य दशा को छोड़कर स्वरूप में लीन रहना ज्ञान दशा है। आत्मा अपने स्वरूप में मग्न रहकर कर्मकृत पर्यायों को अपना न माने तो वह ज्ञानात्मा है। कर्म और कर्मफल से प्राप्त वस्तु का स्वामित्व मानने से ही आत्मा में अज्ञान आया है। यदि जीव पर, वस्तु पर मालिकी करना छोड़ दे तो वह ज्ञानी बन जाता है। जो वस्तु अपनी नहीं है उसे अपनी मानना और जो अपनी है उसे भूल जाना यही अज्ञान है। यह अज्ञान दूर हुआ कि जीव ज्ञानी बन जाता है। सूर्य स्वयं प्रकाशित है। किन्तु उस पर जब बादल छा जाते हैं तब वह ढक जाता है और उसका प्रकाश दब जाता है। लेकिन बादलों के हटते ही पुनः वह प्रकाशित होने लगता है। इसी तरह आत्मा पर भी कर्म प्रकृति से प्राप्त वस्तु की मालिकी

करने से अज्ञान का आवरण आ रहा है। यह आवरण दूर होते ही शरीरावस्था में भी अनन्त बल प्राप्त हो सकता है। अपने ऊपर छाये हुए बादलों को हटाना सूर्य के बस की बात नहीं है किन्तु आत्मा पर छाये हुए कर्मों को दूर हटाना आत्मा के वश की बात है।

आत्मा से कर्म प्रकृति को दूर करने का यह उपाय है कि आत्मा यह समझने लग जाय कि देह भिन्न है और मैं भिन्न हूं। देह खण्डित है, आत्मा अखण्डित है। देह नाशवान है, मैं अखण्डित हूं। मैं और आत्मा एक ही वस्तु हैं। देह और आत्मा अलग-अलग है। अतः देह से मेरा क्या सम्बन्ध। मुझे देह से क्या लेना देना। उसका मेरा कैसा साथ। यदि मैं देह को स्थायी रूप से रखना चाहूं तो नहीं रख सकता और देह भी मुझको अपने में स्थायी रखना चाहे तो मैं भी नहीं रह सकता। देह जड़ और मैं चैतन्य। इसका मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। अज्ञान के कारण ही पर वस्तु को स्ववस्तु मान रखा है। भेद ज्ञान हो जाना ही सम्यग्दर्शन है।

इस प्रकार विचार करने से आत्मा विवेक के घर में प्रवेश करता है। सुज्ञानी बन जाता है। आप लोग ज्ञानी बनकर भगवान के भजन करो। ऐसा न हो कि यहां हमारे सामने तो भजन करलो और घर जाकर अपनी दशा को भूल जाओ। यहां तो आपको भजन करने की ट्रेनींग दी जाती है। घर या व्यवहार में उसका उपयोग करने से ही शिक्षा सार्थक होगी।

यदि कोई कहे कि परमात्मा का भजन करने से किस फल की प्राप्ति होती है तो उसके लिए कहा है—

भजन कियां भवभवना पातक, दुःख दूभाग मिट जावे।
काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा, दुर्मति निकट न आवे रे।
(सुज्ञानी ,

कैसा भी रोगी हो उसे देखकर डाक्टर घबराता नहीं है उसे यह विश्वास रहता है कि रोग मिटाना मेरे बायें हाथ का खेल है। इसी प्रकार अनेक भवों के पापों का विनाश करने का इलाज प्रभु-भजन में संनिहित है। प्रार्थना या भजन करने से शुभ ध्यान रहता है। बुरा ध्यान उस वक्त नहीं रहता। जब बुरा ध्यान न रहेगा तो पाप कैसे टिक सकता है। पाप तो बुरे विचारों में है। बुरे विचारों में पाप बांधने की शक्ति है तो क्या अच्छे विचारों में पाप नाश करने की शक्ति नहीं है? अवश्य है। शुभ विचारों से पाप नष्ट होकर दुःख दूर हो जाते हैं। दुःख क्या हैं सो कहा है—

काम क्रोध मद मत्सर तृष्णा दुर्मति निकट न आवे।

सच्चे दुःख काम, क्रोध, मद, मत्सर, तृष्णा और दुर्मति हैं। परमात्मा के भजन से ये दुःख पास नहीं फटकने पाते। अतः मित्रो! सदा परमात्मा को याद रखो और उसके भजन किया करो।

शास्त्र---

अब इसी बात को शास्त्र कथन द्वारा समझाता हूं। अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कहते हैं कि हे राजन्! जिन वस्तुओं की मालिकी भोगने से आत्मा अनाथ बनता है उन्हीं वस्तुओं को लेकर तू अपने को नाथ मानता है, यह तेरी भूल है। यह अज्ञान है। अनाथता बढ़ाने वाली वस्तुओं से तू नाथ कैसे हो सकता है।

यह कहकर अब मुनि शरीर के कारण जीव की अनाथता बताते हैं। जीव सोचता है कि मैं इस देह का स्वामी हूं। यह देह मेरे अधीन है। इस प्रकार जीव शरीर से ममत्व भाव रख कर उसका स्वामी बनना चाहता है। किन्तु आत्मा शरीर पर जितना अधिक ममत्व भाव रखता है उतना ही अधिक वह अनाथ है।

लोक व्यवहार में किसी आदमी को कायर और किसी को वीर कहा जाता है। वैसे तो कोई भी आदमी अपने को कायर कहा जना पसन्द नहीं करता। सब कोई वीर कहाना चाहता है। किन्तु वीरता और कायरता तो व्यक्ति के कामो पर निर्भर है। जब युद्ध के बाजे बजते हैं तब वीर को ऐसी वीरता चढ़ती है कि वह अपने बाल बच्चों और स्त्री को छोड़ कर घर से निकल भागता है। वह स्त्री बच्चों को तो भूलता ही है किन्तु साथ में अपने शरीर को भी भूल जाता है। शरीर पर उसे कोई ममत्व भाव नहीं रहता। लोकोक्ति के अनुसार

हथेली पर प्राण रखकर युद्ध में प्रयाण करता है। तभी वह वीर कहा जाता है। इसके विपरीत कायर लोग रणभेरी सुन कर शरीर की रक्षा के लिए घर में घुस जाते हैं।

जब लौकिक वीर को भी इतना त्याग करना पड़ता है तब लोकोत्तर वीर बनने के लिए कितना त्याग करने के लिए कटिबद्ध रहना पड़ता है, इसका आप स्वयं ही अंदाजा लगाइये नाथ बनने के लिए शरीर का ममत्व छोड़ना आवश्यक है। जो शरीर पर ममत्व भाव रखता है वह कायर है। वह नाथ नहीं बन सकता। वह तो शरीर से चिपटा रहेगा। वह अनाथ है। कायर है।

मुनि कहते हैं राजन्! तू अपने को शरीर का नाथ मानता है, शरीर को अपना समझता है। किन्तु इस बात पर विचार कर कि दर असल शरीर पर तेरा आधिपत्य है भी या नहीं! जो बात बिन्दु में है वह सिन्धु में भी है। जो बात मुझपर घटी है वह तेरे पर भी लागू होती है। जो मुझ पर विपत्ती बीती है वह सब पर भी बीत सकती है, ऐसा नियम है। मैं भी पहले अपने को शरीर का स्वामी मानता था। किन्तु मेरा यह अभि-मान दूर हो गया है।

मेरी जवान अवस्था थी। जवानी आने पर भाग्य से ही कोई दिवाना न बनता हो। उस समय रक्त में गर्मी रहती है अतः, अधिकांश मनुष्य दीवाने बन जाते हैं। जवानी दीवानी कही गई है। मेरी अवस्था भी जवान थी। साथ में अच्छे

घराने की सुन्दर स्त्रियों से मेरा विवाह होगया था। वह अवस्था उन रुप योवना सुन्दरियों के शृङ्गार आभूषण देखने की थी। किन्तु विधिका विधान ही कुछ और था। रुप सौन्दर्य देखने का साधन ही बिगड़ गया। आंखों में उस वक्त घोर पीड़ा आरंभ होगई। जवानी के दीवाने लोग जिन आंखों से पर स्त्री को तांकते हैं, उन आंखों से मैं अपनी स्त्री की तरफ देखने में भी असमर्थ हो गया था। उसका शृङ्गार देखकर नेत्रों को तृप्त नहीं कर सकता था।

जिन वस्तुओं को देखकर आनन्द माना जाता है, आंखों के खराब होने से वे ही वस्तुएं किसी प्रकार दुःख का कारण बन जाती हैं, यह बात एक उदाहरण देकर समझताहूं।

एक आदमी ने बहुत खर्च कर के एक सुन्दर चित्रशाला बनवानी आरंभ की। उस चित्रशाला को अधिकाधिक सुन्दर बनाने के लिए वह रात दिन प्रयत्न करने लगा। किन्तु ज्यों ही चित्रशाला बन कर तय्यार हुई, वह आदमी अन्धा हो गया। कहिये वह चित्रशाला उस आदमी के लिए सुखदायी रही या दुःख का कारण बन गई? पराई वस्तु पर जो सुख आश्रित रहता है वह वास्तव में सुख नहीं हो सकता। कभी वह दुःख का कारण बन जाता है। आत्मा की यही भूल है कि वह जिसे देखना चाहिए उसे तो नहीं देखता। किन्तु जिसे न देखना चाहिए उसे देखने के लिए ललचाता रहता है। और इस प्रकार वह आंखों के वश होजाता है, आंखों का गुलाम बन जाता है। आंखों का दास बन जाना ही अनाथता

है। आंखों पर काबू रखना, उनको अनिष्ट तत्त्वों पर ही न जाने देना सनाथता है। हम आंखों के वश न हों किन्तु आंखें हमारे वश में हों।

आंखों का उपयोग किस प्रकार करना चाहिए इसके सम्बन्ध में कुछ बताता हूं। एक आदमी को उसके मित्र ने सूक्ष्मदर्शक यंत्र दिया। सूक्ष्मदर्शक यंत्र में वस्तु अपनी आकृति से कई हजार गुनी बड़ी दिखाई देती है। मित्र ने यह यंत्र इस मंशा से दिया कि जो अत्यन्त बारीक पदार्थ या जीव जन्तु हमारी आंखों से नहीं देखे जा सकते वे इस यंत्र के जरिये देखे जांय और जगत में रही हुई गुप्तता के दर्शन किये जांय। किन्तु उसका मित्र इतना मूर्ख ठहरा कि वह सूक्ष्मदर्शक यंत्र का उपयोग गदहे घोड़े देखने में करने लगा गदहे घोड़े तो आंखों से वैसे ही दिखाई देते हैं। सूक्ष्मदर्शन यंत्र पाकर वह फूला न समाता था और नहीं देखने लायक पदार्थ देखकर यंत्र का दुरुपयोग करता था।

कहिये यंत्र देने वाला अपने मित्र पर नाराज होगा या राजी? यंत्र का दुरुपयोग देख कर वह अप्रसन्न ही होगा। मित्र की बात तो आप समझ गये किन्तु जरा अपनी तरफ भी तो नजर करिये। आप को ये अमूल्य नेत्र मिले हैं इनका आप किस तरह उपयोग कर रहे हैं जरा सोचो। सूक्ष्मदर्शक यंत्र बड़ा है या आप के नेत्र ? यदि नेत्रों में रोशनी न हो तो बेचारा सूक्ष्मदर्शक यंत्र क्या कर सकता है। अंधे के लिए चश्मा या सूक्ष्मदर्शक यंत्र क्या काम का? देखने की शक्ति

आंखों में है। यंत्र में तो पदार्थ को बड़ा दिखा देने की शक्ति है। आंखों का सदुपयोग करना सीखो।

आंखों को नासिका पर टिकाकर पलक न गिरने दो। जब तक पलक न गिरेंगे मन एकाग्र रहेगा। यह तो द्रव्य एकाग्रता है। बाह्य एकाग्रता है। किन्तु इसी तरह आंखों की ज्योति को धीरे धीरे अन्तर्मुखी करके अन्तर्यामी परमात्मा के दर्शन करिये। जिन आंखों के जरिये आत्मा बाह्य पदार्थ देखता है अखीर वह देखने की शक्ति आंखों में नहीं है। आंखें भी जड़ है। देखने की शक्ति आत्मा में निहित है। आंखे आत्मा का औजार है जिसके जरिये आत्मा पदार्थों को देखता है। इस आत्म शक्ति का बाह्य सुन्दर दृश्य देखने में और उन दृश्यों में अपने को आसक्त करने में उपयोग मत करो। इसका उपयोग आंखों को काबू में रखकर प्रभुदर्शन में करो। बाह्य सुन्दरता देखने में जो आनन्द आता है वह क्षणिक है। किन्तु आन्तरिक सुन्दरता में जो आनन्द है वह स्थायी है।

आंखों से आप लोग अनेक प्रकार के दृश्य देखते हैं। आप समझते होंगे कि दृश्य देखे और काम खत्म हो गया। किन्तु ऐसी बात नहीं है। वह बाहरी दृश्य तो आंखों से ओझल हो जाता है लेकिन अपना सूक्ष्म संस्कार दिमाग में छोड़ जाता है। जो जो दृश्य हम देखते हैं उनकी सूक्ष्म आकृति हमारे मस्तिष्क पर रह जाती है जिसे संस्कार कहते हैं। हम पदार्थ को जितनी अधिक आसक्ति पूर्वक देखेंगे, संस्कार भी उतने ही गहरे जमेंगे। मस्तिष्क का संस्कार हमारे कार्मण शरीर पर पड़ता है और इस तरह अनेक भव

भवान्तर तक उसकी परंपरा चलती रहती है जब तक की उसको मिटाने का प्रयत्न न किया जाय। इसी कारण ठाणांग सूत्र में 'दिट्ठियाकिरिया' अर्थात् देखने मात्र से क्रिया लगती है। उस देखने में कषाय की मात्रा जितनी होगी उसके अनुसार हलका और चिकना बंध होगा। देखने मात्र से क्रिया लगती है और उसका संस्कार अर्थात् असर कार्मण-सूक्ष्म शरीर पर किस प्रकार पड़ता है यह बात उदाहरण से बताता हूं।

वट का वृक्ष आप सब लोगों ने देखा है और उसकी छाया में भी कभी बैठे होंगे। वट वृक्ष भारत देश में ही होता है। अन्य देशों में नहीं होता। यदि कोई दूसरे देश वाले इसको अपने यहां ले गये हों तो बात अलग है। वट वृक्ष से इन्सान शिक्षा ग्रहण करने लगें तो अपनी बहुत बड़ी तरक्की कर सकते हैं। विष्णु को वटशायी भी कहा जाता है। इसका क्या रहस्य है, यह बताने जितना अभी समय नहीं है। अभी तो यह बताना है कि वटवृक्ष कितना बड़ा होता है और उसका बीज कितना छोटा होता है। कई वटवृक्ष बहुत विशाल हैं और वे भारत में प्रसिद्ध हैं। वटवृक्ष की अपेक्षा उसका फल भी बहुत छोटा होता है। फल की अपेक्षा बीज बहुत छोटा होता है।

एक व्यक्ति वटवृक्ष का छोटा सा बीज अपनी हथेली में लेकर आपसे पूछता है कि महाशयजी इस बीज में वटवृक्ष और उसके फल कहां छिपे हुए हैं, हमें बताइये। क्या आप

वीज में वृक्ष के दर्शन कर सकते हैं या दूसरे को करा सकते हैं? क्या वीज में शाखाएं आदि दिखा सकते हैं? बीज को तोड़कर उसमें वट की कोई आकृति दिखा सकते हैं? कदापि नहीं दिखा सकते। वैज्ञानिकों के सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी अभी इतनी तरक्की नहीं कर पाये हैं कि वे बीज में वृक्ष के दर्शन कर सकें। किन्तु वीज में वृक्ष है जरूर। यदि वीज में वृक्ष न होता तो उगने पर उसमें से वटवृक्ष कैसे निकलता। मिट्टी और पानी के संयोग से वही वीज वटवृक्ष का आकार धारण कर लेता है। नीम के वीज से नीम ही वनता है और वट के वीज से वट ही तय्यार होता है, अतः मानना पड़ेगा कि वीज में सूक्ष्म आकृति छिपी हुई है। जल, मिट्टी का संयोग पाकर वह वाह्य रूप धारण कर लेता है जिसे हमारी स्थूल आंखें भी देख सकती हैं।

एक छोटा सा बीज अपना कितना विस्तार करता है यह आप समझ चुके। अव जरा अपने शरीर की तरफ देखिये। यह भी माता पिता के थोड़े से रजवीर्य से इतना वड़ा वना है। साढ़े तीन हाथ का पुतला कहा जाता है। इस पुतले ने अपना कितना विस्तार किया है, विचार करो। इसके अनेक कुटुम्बी हैं, अनेक दूकानें, अनेक मकान और अनेक प्रकार का साजो सामान है। यह सब इस शरीर का विस्तार है। ये सब चीजें शरीर के लिए हैं। इन सब वस्तुओं का वीज शरीर में मौजूद था तभी ये चीजें हुई हैं। इच्छा और तृष्णा के रूप में सूक्ष्म वीज आपके शरीर में था तभी आगे जाकर ये वस्तुएं आपको मिली हैं।

शास्त्रों में भगवान् ने पांच प्रकार के शरीर बताये हैं। औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तेजेस और कार्मण शरीर। हमारे इस हाड़ मांस के औदारिक शरीर में एक सूक्ष्म शरीर और है जिसे जैन शास्त्रीय परिभाषा में कार्मण शरीर कहते हैं हम जो कुछ आंखों से देखते, कानों से सुनते, मन में विचार करते, उन सबका सूक्ष्म संस्कार इस कार्मण शरीर पर पड़ता है। यानी आस्रव सम्बन्धी सब कामों का संस्कार कार्मण शरीर में मौजूद रहता है। यदि कोई कहे कि हमको कार्मण शरीर में मौजूद सब संस्कार प्रत्यक्ष दिखा दो तभी मानें अन्यथा न मानेंगे तो उनसे यही कहना पड़ेगा कि वट के बीज में वटवृक्ष का रूप न दिखाई देने पर भी मानना पड़ता है। वैसे ही शरीर के भीतर बाहर दिखने वाले इस सारे विस्तार का बीज मानना पड़ेगा। माने बिना काम नहीं चल सकता।

बीज संयोग पाकर वृक्ष बनता है। वैसे ही हमारा औदारिक शरीर तो मरने पर यहीं रह जाता है जिसे लोग जला देते हैं या गाड़ देते हैं किन्तु कार्मण शरीर आत्मा के साथ जाता है और नये शरीर को धारण करके अपने में रहे हुए संस्कारों को जैसे जैसे निमित्त मिलते जाते हैं स्थूलरूप में कुटुम्ब परिग्रह आदि के रूप में प्रकट करता है। कार्मण शरीर को लिंग शरीर भी कहते हैं। प्रतिकूल संयोग मिलने पर जैसे बीज नहीं उगता है वैसे ही प्रतिकूल संयोग से कभी सूक्ष्म संस्कार अपना विस्तार नहीं कर पाते हैं किन्तु आत्मा पाप या पुण्य जो कुछ करता है उसका संस्कार कार्मण

शरीर में मौजूद रहता है।

मित्रों! आप जो कुछ आंखों से देखते हैं वह देखते ही समाप्त नहीं हो जाता किन्तु उसका सूक्ष्म असर कार्मण शरीर पर पड़ता है। अतः आंखों का सदुपयोग करना सीखो। इनसे पाप भी बांध सकते हो और पुण्य भी। यह आपके हाथ की बात है।

एक आदमी आंखों से मैला देखता है। दूसरा अंधा होने के कारण कुछ भी देखने में अपने को असमर्थ पाकर बड़ा दुःखी होता है। देखने की इच्छा होते हुए भी देख नहीं सकता तीसरा आंखों में वेदना होने से कुछ भी देख नहीं सकता है। किन्तु न दिखाने का उसे अफसोस नहीं है। वह वेदना से घबड़ाता नहीं है। वेदना को सहायता करने वाली मित्र मानता है। इन तीनों आदमियों में से आप किसे अच्छा कहेंगे। ज्ञानी लोग तीसरे प्रकार के ही होते हैं। वे दुःख को अपना मित्र मानते हैं और उससे अपनी आत्मा को प्रबल बनाते हैं। जैसे जातिवंत घोड़े को चाबुक लगते ही दौड़ने लगता है वैसे ज्ञानी भी दुःख रूपी चाबुक लगते ही धर्मकार्य में लग जाता है। किन्तु अज्ञानी जीव दुःख आने पर घबड़ा उठते हैं और दुःख को दूर करने के लिए और अधिक दुःख मोल ले लेते हैं। ज्ञानी जिसे दिन मानते हैं, अज्ञानी उसे रात मानते हैं।

ज्ञानियों की विचार धारा के अनुसार यदि आप लोग भी विचार करेंगे और आचरण करेंगे तो अनन्तबली बन

जायेंगे। आप को आत्म कल्याण के सर्व साधन मिले हुए हैं। निरोग शरीर, उत्तम संगति जैन शास्त्रों का श्रवण आदि साधन मिले हुए हैं। शास्त्र वचनों पर श्रद्धा लाना और आचरण करना आपका काम है। आप शरीर स्वास्थ्य के लिए जिस प्रकार डाक्टर वैद्यों की दवा लेते हैं। उसी प्रकार आत्म स्वास्थ्य के लिए हमारी भी दवा लेओ। आप श्रावक हैं। शास्त्र में श्रावक को साधु का माता पिता कहा है आप लोग चाहें कैसे भी हो जावें किन्तु हमें तो आप को श्रावक के नाते पिता माता मानना चाहिए। वृद्ध और रोगी बाप को भी बाप ही माना जाता है। आप भी अपना श्रावक कर्त्तव्य समझकर आत्म सुधारणा करेंगे तो अच्छा है।

चरित्र—

कपिल पुरोहित विविध विद्याधर सुदर्शन से प्रीति।
लोह चुम्बक सममिले परस्पर सरखी सरखीरीति रे, धन०॥
पुरोहित नारी महाव्यभिचारी कपिला कुटिल कठोर।
सेठ कीर्ति सुन सुन्दर तनकी व्यापि मन्मथ जोर रे, धन०॥
पति गये पर देश सेठ से बोली कपट विशेष।
पति हमारा अति बिमारा चलो चलो तज शेष, रे धन०॥

सुदर्शन सेठ गृहस्थ आदमी था। वह गृस्हथकी सारी व्यवस्थाएं पूरी करता हुआ भी धर्मकरणी करने में कभी न चूकता था। उसने कपिल को गुणी और धर्मात्मा समझकर उसके साथ मित्रता की है। विद्या कला आदि में कपिल निपुण था। दोस्ती होने में यह भी एक कारण है।

आजकल कई लोग दूसरों से मित्रता रखते हैं। मगर उनकी मित्रता कैसी होती है, कौन जाने। वैसे तो समान आचार विचार वाले के साथ मित्रता होती है। फिर भी मित्रता में इस बात का खास ध्यान रखना चाहिए कि मित्रता से हमारे धार्मिक खयालातों पर बुरा असर तो नहीं पड़ता है। हमारी धर्मश्रद्धा दोस्ती के कारण ढीली तो नहीं पड़ रही है। जिसकी दोस्ती से धर्मभावना के विकास में रूकावट न आती हो उसके साथ दोस्ती करने में कोई हर्ज नहीं। धार्मिक तत्व को धक्का लगे वैसी दोस्ती कभी न करनी चाहिए। मित्र कुटुम्ब परिवार तो अनेक बार मिल जाते हैं मगर धर्म तत्व की प्राप्ति अति दुर्लभ है। मित्र, कुटुम्बादि की प्राप्ति भी धर्म के प्रताप से होती है अतः धर्म को मुख्य समझना चाहिए।

हमारी धर्मश्रद्धा में जो बाधक हो वस्तुतः वह हमारा शत्रु है। यदि पिता भी धार्मिक विचार में बाधक हो तो स्पष्ट कहा जा सकता है कि मैं आपकी सेवा करने के लिए सदा तय्यार हूं किन्तु आपकी धर्मविरूद्ध मान्यता में सहमति प्रकट करने में मजबूर हूं। आपने मुझे यह शरीर प्रदान किया है अतः यह आपकी सेवा करने के लिए सदा उद्यत है, किन्तु धर्म आत्मा का है। आपने मुझे आत्मा नहीं दिया है। आत्मा मेरा अपना है। उस पर मेरा पूरा अधिकार है। मैं अपने आत्मिक धर्म को नहीं छोड़ सकता। यदि आपके दिए हुए शरीर को मैं कुपथ में लगाऊं तो आप मुझे दण्ड दे सकते हैं। किन्तु मेरी आत्मा को धर्म मार्ग में लगाते हुए आप बाधक

नहीं वन सकते ।

यदिविवाहिता स्त्री भी धर्म मार्ग में बाधक बने तो उसे भी स्पष्ट कहा जा सकता है कि मैंने तुम्हारे साथ जीवन पर्यन्त के लिए सम्बन्ध किया है अतः मैं तुम्हारे शरीर का पोषण करने के लिए सदा तय्यार हूं किन्तु तुम्हारे लिए अपना आत्मिक धर्म किसी हालत में त्यागने को तय्यार नहीं हूं। इसी प्रकार मित्र भी यदि धर्म भावना में बाधक वनता हो तो साफ कह दिया जाना चाहिए कि मित्रता के नाते तुम्हारे संकट काल में मैं सदा सहायता करने के लिए उद्यत हूं किन्तु अपने धर्म में बाधा न आने दूंगा । मतलब कि कोई भी सांसारिक सम्बन्ध हमारी धर्मभावना में बाधक नहीं हो सकता। न होने देना चाहिए। सुदर्शन ने कपिल से समान-धर्मी होने के नाते से मित्रता की है ।

जब पति-पत्नी में आपस में मेल न रहे और कोई क्लेश हो जाय उस समय दोनों का क्या कर्त्तव्य है? क्या एक दूसरे से छूटा छेड़ा कर लेना, तलाक दे देना? नहीं, यह भारतीय पद्धति नहीं है। भारत में पति-पत्नी का सम्बन्ध जीवन पर्यन्त के लिए होता है। शादी के वक्त दोनों जीवन-पर्यन्त साथ रहने की प्रतिज्ञा करते हैं। कोई किसी को दस्तावेज लिखदे और बाद में मुकर जाय तो क्या उचित गिना जायगा? जीवन साथी बनकर छोटी मोटी बातों के लिए तलाक तक की बातें करना अशोभनीय है। राज्य की नौकरी सदा लेता रहे और जब युद्ध में जाकर सिर कटाने की नौवत

आये तब नौकरी से स्तीफा दे तो क्या मंजूर होगा और क्या यह अच्छी बात गिनी जायगी ? इसी प्रकार पति-पत्नी पहले साथ रहने का इकरार करके फिर कष्ट के समय अलग कैसे हो सकते हैं। हां यदि पत्नी या पति एक दूसरे के धर्म पर आघात करते हों-तो उस वक्त अपना धर्म बचाना कर्त्तव्य है।

उपासक दशांग सूत्र में महाशतक श्रावक का कथन आया है। महाशतक की स्त्री रेवती अपनी बारह सौतों को मारकर मदिरा मांस में निरत रहती थी। किन्तु महाशतक ने अपना धर्म उससे अलग मानकर संसार के सारे कार्य छोड़--कर प्रतिमा धारण कर धर्मस्थान में आश्रय लिया। उसे अवधि ज्ञान उत्पन्न हो गया। एक दिन उसकी स्त्री रेवती धर्म-स्थान में आकर उससे कहने लगी कि यह क्याढोंग कर रक्खा है। तुमको किसने भरमाया है जो प्रत्यक्ष आनन्द को छोड़कर परोक्ष आनन्द की आशा में यहां बैठे हो। चलो घर चलो। संसार का आन्नद भोगें।

रेवती का वक्तव्य सुनकर महाशतक कहने लगा कि तेरे अन्य अनेक आघात मैंने सहन किये हैं। मगर मैं अपने धर्म पर किया हुआ आघात सहन करने में असमर्थ हूं। यह कह कर गुस्से में आकर महाशतक ने रेवती को बता दिया कि तू मरकर चौरासी हजार वर्ष की आयु लेकर प्रथम नरकावास में उत्पन्न होगी। अपने लिए यह भविष्यवाणि सुनकर रेवती डर गई और वापस लौट गई।

भगवान महावीर स्वामी को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने गौतम स्वामी को भेजकर क्रोध के वश होकर

रेवती को नरक जाने की बात बता देने के लिए महाशतक से आलोचना निन्दना करवाई हैं। भगवान ने कहा था कि महाशतक तुम्हारा धर्म स्वतन्त्र है। किसी के कहने से वह खराब नहीं हो सकता। तुमने क्रोध के वश होकर अपने अवधिज्ञान का दुरुपयोग किया है और इस तरह तुम दोष के भागी हुए हो।

सारांश यह है कि, धर्म स्वतन्त्र वस्तु है। कोई भी सांसारिक सम्बन्ध उसमें बाधक न होना चाहिए। बाधाओं को पार कर धर्म का पालन करना चाहिए। सुदर्शन ने कपिल को गुणी देखकर और धर्म का सहायक जानकर उससे मित्रता की है। कपिल के यहां धन की कमी नहीं थी।

राज्य की तरफ से उसे आय थी अतः धन की कमी कैसे हो सकती थी। कपिल बुद्धिमान था अतः सोचा करता था कि मुझे यह ऋद्धि मिली है और मैं राजा गुरु हूं अतः मुझे बहुत सावधान रहना चाहिए। मुझ से कोई बुरा कार्य न होजाय। मेरे सामने उच्च आदर्श रहे ताकि मैं अपना जीवन स्तर ऊंचा रख सकूं। इधर कपिल इतनी उच्च भावनाओं में लीन है उधर कपिला क्या सोचती है सो देखिये।

कपिल की स्त्री कपिला विचार करती है कि मुझे इतनी ऋद्धि सम्पत्ति, भोग और ऐश्वर्य मिले हुए हैं। जीवन का उद्देश्य भोग भोगना और ऐश आराम में मश्गूल रहना

ही है। यह धन दौलत और साजो-सामान मौज-मजा उड़ाने वास्ते ही तो है। इस प्रकार दोनों पति-पत्नी की विचारधारा में वृहद् अन्तर था। दोनों के मार्ग भिन्न थे। जीवन का रहस्य दोनों ने दो प्रकार से समझा।

सुदर्शन और कपिल दोनों मित्रता के बन्धन में बंधे हैं। आजकल लोग पार्टियां उड़ाने के लिए भी दोस्त बनते हैं। नाटक सीनेमा या ऐसे ही अन्य आमोद प्रमादों में शामिल होने के लिए मित्रता की जाती है। किन्तु सन्मित्र का मिलना बड़ा कठिन है। सुदर्शन और कपिल दोनों योग्य थे दोनों की ऐसी गाढ़ मैत्री हुई कि दो शरीर एक आत्मा थे। जब सुदर्शन को फुरसद मिलती, कपिल के घर चला जाता और जब कपिलको फुरसद मिलती सुदर्शन के घर चला जाता। यद्यपि वे भिन्न-भिन्न कामों में लगे रहते थे किन्तु उनका मन एक दूसरे में लगा रहता था।

सुदर्शन कपिल के घर जाया करता था। कपिल की स्त्री कपिला सुदर्शन का रूप सौन्दर्य देखकर उस पर मोहित होगई। वह विचारने लगी कि यह कितना सुन्दर पुरुष है। इसका चेहरा कितना आकर्षक है। ऐसा मन मोहक पुरुष मैंने कभी देखा ही नहीं है। क्या मैं इसका सौन्दर्य देखकर प्रशंसा मात्र करके रह जाऊंगी या इसके साथ सांसारिक भोग भोगने की कोशिश करूं? मैं बुद्धिमती हूं, कलाकुशल हूं। यदि मैं इसके साथ भोग न भोग सकी तो मेरी होशियारी किस काम की?

एक मित्र की स्त्री अपने पति के मित्र के विषय में बुरे विचार करती है, जानकर हैरानी होती है संसार की दशा बड़ी विचित्र है।

किसी कवि ने कहा है कि—

न जाने संसारे किममृतमयं किं विषमयम्।

इस संसार में कौनसी वस्तु अमृत मय है और कौनसी वस्तु विषमय हैं इस का निर्णय करना बड़ा कठिन है। जो वस्तु एक व्यक्ति के लिए कभी अमृतमय होती है वही दूसरे के लिए विषमय हो जाती है और जो विषमय होती है वह अमृतमय हो जाती है।

जिस सुदर्शन को देखकर अनेक लोगों के दिलों में प्रेम भावना और उच्च विचार जागृत होते हैं, अनेको के हृदयों में धर्म भावना जागृत होती है उसी सुदर्शन को देखकर कपिला के चित्त में कामवासना जागृत हो जाती है। इसीलिए कहता हूं कि संसार की दशा बड़ी विचित्र हैं। इसे समझना सरल काम नहीं हैं।

कपिला को जो लगन लगी वह लगी ही रही। वह अपनी लगन पूरी करने का उपाय सोचने लगी। सुदर्शन मेरी परवाह नहीं करता, मेरी तरफ ताकता तक नहीं है। मालूम पड़ता है यह सरलता से मेरे काबू में आने वाला प्राणी नहीं है। इसको अपने वश में करने के लिए तिरिया चरित्र का उपयोग करना पड़ेगा।

कविता में कपिला को महाव्यभिचारिणी कहा गया है। इस का अर्थ यह नहीं है कि वह वाजारु स्त्री थी या सुदर्शन के सिवा अन्य किसी पर पुरुष पर वह आसक्त थी। उसे महाव्यभिचारिणी कहने का आशय इतना ही है कि उसने एक सदाचारी महापुरुष को आचार भ्रष्ट करने की चेष्टा की थी। जैसे कोई पुरुष राजा का भंडार तोड़ कर चोरी करता है तो वह महाचोर कहा जाता है क्योंकि उसने वड़ा साहसपूर्ण कदम उठाया है वैसे ही कोई राजा की रानी से व्यभिचार सेवन करे तो वह महाव्यभिचारी कहा जाता है। यदि कोई साधु राजा की रानी से व्यभिचार करता है तो शास्त्रों में उसे दस वां प्रायश्चित का भागी वताया है और यदि वह किसी अन्य सामान्य स्त्री से व्यभिचार सेवन करता है तो वह आठवें प्रायश्चित का अधिकारी कहा गया है अर्थात् रानी के साथ भ्रष्ट होने को महापाप मना गया है। इसी प्रकार जिस सुदर्शन की संगति से पापी भी धर्मात्मा हो जाते है उसके साथ भोग भोगने की चेष्टा करने के कारण कपिला को महाव्यभिचारिणी कहा गया है।

अकस्मात राजा को कोई ऐसा आवश्यक कार्य उपस्थित हो गया जिसके लिए कपिल को वाहर भेज देना पड़ा। कपिल इतना जल्दी रवाना हुआ कि अपने प्रिय मित्र सुदर्शन से भी जाते समय मिल न सका। जाते वक्त अपनी स्त्री कपिला से इतना कह कर चला गया कि यदि कोई जरूरी कार्य पड़ जावे तो मेरे मित्र सुदर्शन से कहना, कह कर देगा।

अपने पति के बाहर चले जाने और सुदर्शन से आवश्यक कार्य करा लेने की भलामन से कपिला बड़ी प्रसन्न हुई। यह अच्छा अवसर हाथ लगा है कि मैं सुदर्शन को अपने काबू में कर सकूंगी। यह भी अच्छा हुआ कि जाते वक्त मेरे पति सुदर्शन से मिलकर न जा सके। मिलकर जाते तो मुझे अपने इरादे पूरे करने में दिक्कत पेश आती। कपिल मुझ से कहकर ही गये हैं कि कोई आवश्यक कार्य हो वह मेरे मित्र सुदर्शन से करा लेना, उसे मेरे स्थान पर मानना और किसी प्रकार का संकोच मत करना।

'उसे मेरे स्थान पर मानना' कहकर मेरे पति ने अपने मित्र सुदर्शन के साथ भोग भोगने की मुझे स्वीकृति दे दी है।

दुर्जन लोग सदाशय से कहे हुए शास्त्र वचनों में से भी बुरा अर्थ निकालने की कोशिश करते हैं। किसी के द्वारा अच्छे भावों से प्रेरित होकर कोई बात कही जाय उसे भी दुर्जन बुरे अर्थ में ग्रहण कर लेते हैं। जैसी जिसकी भावना होती है वैसा ही वह अर्थ निकालने का प्रयत्न करता है। कपिल ने शुभ आशय से अपने मित्र की योग्य सहायता लेने की बात कही थी। उसका कितना गन्दा अर्थ ग्रहण करके, अर्थ का अनर्थ करने के लिए कपिला उद्यत हो गई।

कपिल दूसरे गांव चला गया है। कपिला अपने मन की मुराद पूरी होने की आशा से बड़ी प्रसन्न है। इतना सुन्दर अवसर मिलने के लिए अपने भाग्य को सराह रही है। उसने

अपने भवन को बड़ा परिश्रम करके खूब सजाया। वस्त्रा-भूषणों से अपना शरीर भी खूब अलंकृत किया। सब श्रृंगार सजाकर वह बड़ी तेजी के साथ दिल में घबड़ाहट लिए हुए सुदर्शन के घर पहुंची। मित्र की नारी को अपने घर पाकर सुदर्शन ने उसका बड़ा आदर सत्कार किया। किन्तु उसकी दृष्टि कपिला के पैरों पर थी। उसके रूप व श्रृंगार की तरफ सुदर्शन का किंचित् भी ध्यान न था।

मित्र की नारी को किस दृष्टि से देखना चाहिए इसका भी बड़ा लम्बा विचार है। आजकल विषय भोग की छूटसी दे रखी है ऐसा मालूम होता है। मगर छूट से कैसे-कैसे अनर्थ हो जाने की सम्भावना रहता है, यह जानने वाले जानते हैं। **अधिक छूट अनर्थ का कारण है।**

कपिला को घबड़ाई हुई अवस्था में देखकर सुदर्शन ने पूछा कि क्या बात है सो आप इतनी परेशान हैं? सुदर्शन के प्रश्न के उत्तर में कपिला ने मुंह बनाकर आंखों से आंसू डालते हुए कहा, क्या कहूं कुछ कहा नहीं जाता, बोलते हुए मेरा दिल भर आता है। आपके चले आने के बाद आपके मित्र के शरीर में बड़े जोर से शूल चलने लगी। शूल इतनी जोर से चल रही है कि आपके मित्र को एक क्षण के लिए भी चैन नहीं है। वह प्रति पल अपने मित्र की रट लगा रहे हैं। मानो आपही उनके लिए भगवान हो। अतः कृपया शीघ्र चलिये, अन्य काम छोड़ दीजिये। विलम्ब करने जैसा यह अवसर नहीं है एक एक क्षण की बड़ी कीमत है आप वक्त पर

चल कर उनके इलाज़ का उचित प्रबन्ध कीजिये। अन्यथा गजब हो जायगा।

मित्रो ! कपिला के पेट में क्या बात है और मुंह से क्या बात कह रही है। शास्त्र में इस प्रकार के कपट को माया शल्य कहा है। कपट करके दूसरों को ठगना अपनी आत्मा में कांटे चुभोना है। कपटी आदमी दूसरों को ठगने की कोशिश में अपनी आत्मा को ही ठगता है। दूसरे का ठगा जाना तो अनिश्चित है किन्तु आत्म वंचना तो स्पष्ट प्रकट है।

अपने मित्र की बिमारी के समाचार सुनकर सुदर्शन का जीव उसके घर जाने से कैसे रूक सकता था। कपिला के से हालात सुनकर सुदर्शन को विश्वास हो गया कि जरूर शूल की बिमारी हो गई है। शरीर है, किस वक्त क्या बिमारी हो जाय इसका कोई ठिकाना नहीं है। इस शरीर में अनेक रोग भरे हुए हैं। यह शरीर रोग का घर है।

सुदर्शन ने सहज भाव से कपिला से पूछा कि ऐसी भयानक अवस्था में मेरे मित्र को अकेला छोड़कर कैसे आ गई ? कपिला ने चट उत्तर दे दिया कि नौकर को भेजने से संभव है आप आते या न आते इसी आशंका से मैं स्वयं भागी हुई आई हूं। सुदर्शन ने कहा, अच्छा आप चलो। मैं अभी आता हूं। कपिला ने कहा, ऐसा नहीं हो सकता। आप आगे आगे चलो मैं आपके पीछे चलती हूं।

सुदर्शन जैसे खड़ा था वैसे ही मित्र के घर चल पड़ा। आगे २ सुदर्शन और पीछे २ कपिला। पीछे चलती हुई

कपिला मन में फूली न समाती थी कि किस प्रकार मैंने सेठ को अपने चंगुल में फंसा लिया है। लोग कहते है कि कपट न करना चाहिए। किन्तु कपट जाल रचने से कितनी खुबी से कार्य सिद्ध हो जाता है। अगर मैं कपट का आश्रय न लेती और मेरे घर पर आते। कदापि न आते।

आज कल भी लोगों ने कपट या माया जाल को एक सुदंर नाम दे रखा है। कपट को पालिसी कहते है! इस प्रकार की पालिसी से काम चलाते हैं कि घर में कुछ और है और लोगों को कुछ और बताते हैं। अपनी हैसियत को छ गुनी कर के बताते है। किन्तु मित्रों! बालू की नींव पर खड़ा किया हुआ भवन कितने दिन तक टिक सकता है। कभी न कभी असलियत जाहिर हुए बिना नहीं रह सकती।

कपिल के घर आकर सुदर्शन ने कपिला से पूछा कि बताओ कि मेरा मित्र कहां पर है? कपिला ने कहा कि ऐसे बीमार बाहर कैसे रह सकते है। वे घर के भीतर सोए हुए है जैसे ही सेठ घर के भीतर पहुंचे कि कपिला ने घर के द्वार बन्द कर दिए। अपने को मकान में बंद पाकर सेठ समझ गये कि यहां जरुर दाल में काला हैं। कोई षड्यंत्र है फंस तो गया हूं। अब तो बाहर निकलने का उपाय सोचना चाहिए। अभी तक मैं भावना से शीलव्रत का पालन करता आ रहा हूं आज उस भावना को परीक्षा की कसौटी पर कसा गया है मैं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हो जाऊं तभी मेरी भावना की कोई कीमत हो सकती है।

सुदर्शन सेठ कपिला की कैद में बंद है। अब आगे क्या घटना चक्र घटित होने वाला है यह फिर बताया जायगा।
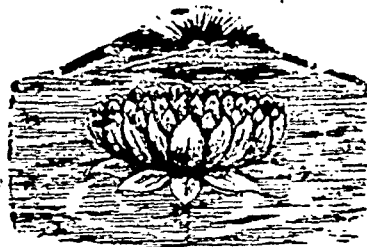
८-८-३६
राजकोट

ॐ

रोग आत्मा का परम मित्र है

समुद्र विजय सुत श्री नेमीश्वर, जादव कुल को टीको।
रतन कूख धारणी शिवादे, तेहनो नंदन नीको।
श्री जिन मोहन गारो है जीवन प्राण हमारो है ॥टेर॥

प्रार्थना—

यह बाईसवें तीर्थङ्कर भगवान् अरिष्टनेमी की प्रार्थना है। परमात्मा को मोहनगारो कहने की कितनी सत्ता है! कौन व्यक्ति भगवान् को मोहनगारो बना सकता है। किसने परमात्मा को मोहनगारो बनाया है? हम लोग परमात्मा को मोहनगारो बनाने का केवल अनुसरण भी करते हैं। या केवल जीभ से उनकी प्रशंसा करते हैं। हृदय से भगवान् को मोहनगारो नहीं बनाया है। भगवान् को मोहनगारो भगवती राजमती ने बनाया था जिसने उनको हृदय में स्थान देकर अपना और जगत् का कल्याण किया था।

भगवान् अरिष्टनेमी और राजमती की पुण्यकथा जगत का कल्याण करनेवाली है अतः संसार के लोग उन दोनों को श्रद्धांजलि समर्पित करके कहते हैं कि हे अन्तर्यामी! वह दिन कब आवेगा कि हम लोग भी राजमती के समान भगवान् को मोहनगारो बना सकेंगे। कवियों ने तथा ग्रंथकारों ने इन दोनों के जीवन का वर्णन बहुत विस्तार और रोचक ढंग से किया है. फिर भी इनका पूरा वर्णन करने के लिए वृहस्पति भी समर्थ नहीं है। तब आप हम किस बिसात में हैं। इनके अंतरंग चरित्र का वर्णन करते करते मन, बुद्धि और वाणी, नेति नेति कहकर अपनी अशक्ति प्रकट करते हैं। तर्क का उस प्रदेश में प्रवेश ही नहीं है। फिर भला मैं उस अनन्त शक्ति का वर्णन करने में कैसे समर्थ हो सकता हूं। किन्तु मित्रो! पक्षियों से शिक्षा ग्रहण करके मैं अपनी निराशा मिटा लेता हूं और उस शक्ति का वर्णन करने का प्रयास करता हूं। जितना वर्णन कर सकें उतना ही अच्छा है।

आकाश अनन्त है अतः पक्षी यह विचार करके न उड़ें कि इतने बड़े विशाल आकाश को हम कैसे पार करेंगे तो उनकी उड़ने की जो शक्ति है वह भी दिनों दिन नष्ट होती जायगी। पक्षी आकाश की अनन्ता का खयाल न करके वे अपना कार्य जारी रखते हैं। पृथ्वी पर उनको जरा सा भी कोई भय का कारण उपस्थित हुआ कि चट से उड़कर वे आकाश की शरण लेते हैं। पृथ्वी पर तो पक्षी इसलिए आते हैं कि उनको अपने शारीरिक पोषण के लिए चुग्गा पानी मिल जाय। प्रधानतया आकाश को ही वे अपना आधार मानते हैं।

ज्ञानियों के लिए भी यही बात उपयुक्त है। उनका वास्तविक आधार अनन्त परमात्म शक्ति है। जब जब सांसारिक झंझटों से उनकी आत्म शक्ति को ठेस पहुंचती है वट से परमात्मा की शरण ग्रहण कर लेते हैं कर्मों के बन्धन के कारण ही शरीर रूपी कारागार में वे रहते हैं किन्तु उनका सच्चा निवास स्थान परमात्मा का स्वरूप ही है। शरीर को चुग्गा देने के लिए संसार में रहना पड़ता है किन्तु मन पर-मात्मा की तरफ लगा रहता है। जिस तरह पक्षी आकाश का पार न पाते हुए भी उड़ना जारी रखता है उसी तरह ज्ञानी भी परमात्म-स्वरूप के वर्णन करने में पार न पाते हुए भी प्रयत्न जारी रखते हैं। जिन्होंने उस अनन्त परमात्मशक्ति का पार पा लिया वे उसका वर्णन करते नहीं और जिन्होंने पार नहीं पाया वे पूरा वर्णन करने में असमर्थ हैं।

आध्यात्मिक विचारकों ने शरीर पर ध्यान न देकर शरीर में रहने वाले आत्मा पर विशेष ध्यान दिया है। आत्मा के लिए एक मात्र आधार भगवान नेमीनाथ ही हो सकते हैं।

इस संसार में विविध विचार धाराएं प्रचलित हैं। कोई कहते हैं इस संसार में जो कुछ है वह शरीर ही है। पंचभूतों का बना हुआ यह पुतला ही सब कुछ है। कोई कहते हैं--श्वासादि प्राण ही सब कुछ है। 'मैं' प्राण से भिन्न नहीं है। अर्थात् प्राण ही 'मैं' हूं। आजकल के वैज्ञानिक मन तक पहुंचे हैं। वे मन को ही सब कुछ मानते हैं। आत्मा को इससे भिन्न स्वतन्त्र नहीं मानते। कुछ लोग विज्ञान को ही

मानते हैं। अर्थात् भिन्न भिन्न मतवादियों की आत्मा के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न कल्पनाएं हैं। कोई शरीर को, कोई श्वासादि को, कोई प्राण को, कोई मन को और कोई विज्ञान को 'मैं' हूं, ऐसा मानते हैं। शरीरादि में अपने मन का बोध करते हैं किन्तु इन सबसे स्वतन्त्र और भिन्न आत्मा को नहीं पहचानते ।

आत्मतत्त्व के जानकार वेत्ता कहते हैं कि तू न शरीर है न श्वास प्राण मन विज्ञानादि। किन्तु जिसके चलते शरीर है शरीर के चलते जो नहीं है; जिसके चलते श्वास है श्वास के चलते जो नहीं हैं; जिसके चलते प्राण हैं, प्राण के चलते जो नहीं है; जिसके चलते मन है मन के चलते जो नहीं है, जिसके चलते विज्ञान है विज्ञान के चलते जो नहीं है, वह तू है। अर्थात् इन शरीर श्वास प्राण मन विज्ञान आदि का संचालक कोई अन्य ही है। वह संचालक है आत्मा ! आत्मा की शक्ति से इन सब में शक्ति है। आत्मा के विना ये सब जड़ हैं निर्जीव हैं आत्मा इन सबका संचालक है। ये सब उसके द्वारा संचालित होते है। इस तत्त्वज्ञान को पहचानो। यही सच्चा तत्त्वज्ञान है। शरीरादि को सब कुछ मत मान बैठो। आत्म स्वरूप को भी पहिचानो।

शास्त्रः—

शरीराध्यास छोड़ने के लिए अनाथी मुनि की शरण जाना चाहिए अनाथी मुनि ने अपने को शरीर से भिन्न मानकर

उसका ममत्व छोड़ा तभी उनकी वेदना मिटी और वे नाथ बन सके।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को समझा रहे हैं कि राजन्! तू शरीर व ऋद्धि सिद्धि को ही सर्वस्व मान रहा है, यह भूल है। इस शरीर में रहने वाला आत्मा समीपतम है और वही सब कुछ है। शरीर को अपना मानना गोया धुआं को पकड़ने की कोशिश करना है। आत्मा का इस शरीर में जो अभेदाध्यास है उसे मिटाना जितना कठिन है उतना ही सुन्दर भी है। जैसे हीरा गहरी जमीन खोदने पर ही हाथ लगता है और हाथ लगने पर सारे जन्म का दारिद्र्य दूर हो जाता है। उसी प्रकार शरीर से अध्यास मिटाना बड़ा कठिन काम है किन्तु एक बार अध्यास मिट जाने पर किसी प्रकार का कष्ट या अज्ञान बाकी नहीं रहता।

शरीर से अध्यास या अपनापन छुड़ाने के लिए अभ्यास करना चाहिए। शरीराध्यास छुड़ाने के लिए मैं गणधरों की वाणि आपके सामने रखता हूं।

'संता चे उच्छिष्ट बोलितो मी बोल कायमी पामर जाणात्रे'

मेरे पास कुछ नहीं है। गणधरों की उच्छिष्ट वाणि को ही सरल बनाकर आपके सामाने उपस्थित करता हूं। आपको गणधरों का कृतज्ञ होना चाहिए कि उन्होंने आपके जीवन कल्याण के लिए कितने प्रयत्न किये हैं। अनाथी मुनी ने राजा श्रेणिक को जिन शब्दों में बोध दिया था उन को गणधरों ने

शास्त्र रूप में गूंथकर हमारे लिए वारसे के रूप में छोड़ दिया है। जिस प्रकार पिता अपने पुत्र पौत्रों के लिए कठिन परिश्रम से उपार्जित धन सम्पत्ति छोड़ जाता है उसी प्रकार जगदुपकारी गणधर देव भी वडे श्रम पूर्वक शास्त्रों का संग्रह करके हमारे लिए छोड़ गये हैं। गणधरों की दी हुई आगम सम्पत्ति की वृद्धि करना और उसका प्रसार करना आपका फर्ज है। यदि वृद्धि नकर सके तो कम से कम उस वाणि को सुरक्षित रखने का प्रयास अवश्य करना चाहिए। वह पुत्र कपूत गिना जाता है जो अपने वाप दादों की सम्पत्ति को नष्ट कर देता है। जो सम्पत्ति को सुरक्षित रखता है या वढ़ाता है वह सपूत गिना जाता है। भगवान की वाणि रूपी संपत्ति का आप कम मूल्यांकन न करें। इसका मूल्य भौतिक संपत्ति से वहुत अधिक है।

श्रेणिक राजा से अनाथी मुनि कहते है-'एसा मज्झ अणाहया' यह मेरी अनाथता है। यह पद वीजमंत्र है। नराधिप! मैं किस किस ओर से अनाथ था यह कैसे वताऊं? यदि मैं किसी एक वात से अनाथ होता तो उसका कुछ जिक्र भी करता। किन्तु मैं तो सभी तरफ से अनाथ था। जिस शरीर को तू सर्वस्व मानता है,उस शरीर की सर्वस्व मानी जाने वाली ये आंखें ही मेरे लिए घोर दुःख का कारण वन गई थी।

श्रीपन्नवणा सूत्र में कहा कि सार से सार भूत पुद्गलों से आंखें वनती हैं। तलवार की धार के समान अत्यन्त स्वच्छ पुद्गलों से चक्षुउप करणेन्द्रिय की रचना होती है। संसार

की वस्तुए आंखों में प्रतिबिंबित होती है। जो कुछ दृश्य सामने पड़ता है आंखों में उसकी छाया पड़ती है, आंखें पदार्थ को देखती है। न मालूम आज तक कितने दृश्य इन आंखों ने देखे हैं। और भविष्य में कितने रुप अब और देखेगी, कहा नहीं जा सकता। ऐसी बहुमूल्य आंखों का क्या उपयोग करना चाहिए यह सोचो।

राजन्! जिन आंखों से प्रभु दर्शन करने का काम लेना चाहिए था मैं उन से कुछ और ही कार्य लिया करता था। मैंने अमृत से पैर धोने का कार्य किया जिस अमृत की एक बून्दसे रोगीका रोग दूर हो सकता है उससे पैर धोना उसका दुरुपयोग ही है। जिन आंखों की बनावट में सब पुद्‌गलों सार लगा है उनका उपयोग नाटक, सीनेमा देखने में करना, अमृत से पर धोना ही है। किन्तु जब मुझे सच्चा ज्ञान हुआ आंखों से प्रभु दर्शन करने कार्य लेने लगा हूं। किसी महाशक्ति ने मेरी आंखों में वेदना पैदा करके मुझे सच्चा बोध करा दिया।

राजन्! तू कहेगा कि क्या उस महाशक्ति को मेरे से कोई शत्रुता थी जिससे उसने मेरी आंखों में शत्रु द्वारा भाला खोंचे जाने लायक कष्ट उत्पन्न किया था? नहीं,उस महाशक्ति को मुझ से शत्रुता न थी। किन्तु मुझ पर उसकी बड़ी करुणा थी। तू समझ सकता है कि युवावस्था में कंचन और कामिनी का त्याग करना कितना कठिन है। उस महाशक्ति का ही प्रताप है मैं युवावस्था में त्याग मार्ग अंगीकार कर सका मूर्ख लोग वेदना को चाहे शत्रु माने, मैं तो अपना परम मित्र मानता हूं। मैं तो यही कहूंगा कि मुझ पर उसकी अनन्त करुणा थी।

राजन् ! साधारण व्यक्ति असमंजस में पड़ सकता है कि दुःख देने वाली शक्ति को शत्रु कहा जाय या मित्र ? एक तरफ उसने घोर वेदना प्रदान की और दूसरी तरफ संसार के आल जाल से छुड़ा दिया । दोनों परस्पर विरोधी कार्य मालूम देते है । किन्तु नहीं, विचार करने से दोनों कार्यों की संगति वैठ जाती है। संसार के माया जाल से छुड़ाने में वेदना कारण वन गई । जो वेदना अनादिकालीन भव चक्र को छुड़ाने वाली हो उसे शत्रु रुप कैसे माने । उसे तो परम मित्र कहना पड़ेगा ।

मान लीजिये एक आदमी के हाथ में जहरी छाला है। यदि उस छाले को फोड़कर उसका जहर दूर न किया जया तो वह सारे शरीर में विष फैला कर मृत्यु तक पहूंचा देता है। डाक्टर ने चीरा लागा कर जहर निकाल दिया । चीरा लगाने से वेदना होती है । क्या चीरा लगने वाले डाक्टर को शत्रु कहा जयागा । ? कदापि नहीं । मेरे सामने तो आप स्वीकार करते हैं । किन्तु वेदना उपस्थित होने पर उस से घबड़ा कर वस्त्र फेंकने के लिए तो उतारु नहीं हो जाते हैं ।

सामने सब कोई हां, हां, करते हैं । एक वार उदयपुर के दीवान कोठारी बलवन्तसिंहजी जब वे युवक थे मेरे व्याख्यान में आये थे । उसवक्त उन को साधुओं पर प्रेम या भक्तिभाव न था । एक साधु का अपराध देखकर उस का जबरदस्ती भेष छिन कर उसे निकाल दिया था । उन कोठारी जी ने भी 'संसार के लोग भिखारी है' विषय पर मेरा भाषण सुनकर यह स्वीकार किया था कि वास्तव में हम संसार के

लोग भिखारी हैं। कहना और बात है और आचरण में लाना कुछ और बात है। कहने मात्र से काम नहीं चल सकता।

मुनि कहते हैं कि राजन्! जिस शरीर पर मैं फूला न समाता था उसे दाहज्वर से पीड़ित अनुभव करके मुझे विश्वास हो गया कि मैं सचमुच इस शरीर का नाथ नहीं हूं। मेरी इच्छानुसार जब यह शरीर नहीं रहता है तो मैं इसका नाथ कैसा? वास्तव में शरीर भिन्न वस्तु है और मैं उससे अलग स्वतन्त्र हस्ती हूं, ऐसा मुझे बोध हुआ। यद्यपि आत्मा और शरीर दूध पानी की तरह एकमेक मालूम होते हैं फिर भी जैसे दही जमा लेने पर पानी अलग हो जाता है और दूध का अंश अलग दही-रूप में रह जाता है। वैसे ही ज्ञान दर्शन चरित्र और तप रूप जांवण से आत्मा और शरीर अलग-अलग हो जाते हैं। संयम और तप से आत्मा अपनी वास्तविक स्थिति प्राप्त कर लेता है।

राजन्! वेदना के समय मुझे वेदना का वास्तविक कारण ज्ञात हो गया। मेरी वेदना का कारण कोई बाहरी न था। उसका कारण मेरे भीतर ही विद्यमान था। मेरी कषाय आत्मा ही वेदना का असली कारण थी। जब मैंने यह जान लिया कि मेरे रोगों का मैं स्वयं निर्माता हूं, तब यह भी अपने आप बोध हो गया कि मैं स्वयं ही अपना उद्धार कर सकता हूं। कोई बाह्यशक्ति मेरा उद्धार नहीं कर सकती।

'उद्धरेदात्मनात्मानम्'

अर्थात् आत्मा से आत्मा का उद्धार करना चाहिए। कांटे से कांटा निकालना चाहिए। शुद्ध आत्मा की शक्ति से अशुद्ध आत्मा का उद्धार करना चाहिए। अथवा यों भी कह सकते हैं कि ज्ञानात्मा से कषायात्मा का उद्धार करना चाहिए आत्मा को बंधन में डालने वाला या मुक्ति दिलाने वाला बाहरी कारण निमित कारण ही हो सकता है। उपादान कारण तो आत्मा स्वयं है। जो बंधन में फंस सकता है वह छुटकारा भी पा सकता है।

राजन्! इस प्रकार विचारों की उत्ताल तरंगों में मैं उलझा हुआ अपने उद्धार का मार्ग सोच रहा था। किन्तु मेरे इस शरीर का मैं अकेला ही मालिक न था। मेरे अनेक सम्बंधी मित्र और कुटुम्बी जन भी अपने को मेरे, इस शरीर का स्वामी मान रहे थे। मेरे इस शरीर को कोई पुत्र कह कर पुकारता था कोई पति, भाई, साला बहनोई आदि भिन्न २ सम्बन्ध दर्शक शब्दों से पुकार कर अपनापन प्रकट करते थे। मैंने सोचा मेरी तरह ये लोग भी अपनी शक्ति आजमा लेवें। जब ये लोग मेरी वेदना नष्ट करने में अपने को असमर्थ जाहिर कर देंगे तभी मैं अपनी अनाथता मिटाने के लिए कदम बढ़ाऊंगा। मेरे पिता, माता, स्त्री आदि ने उनसे जो बन पड़ते थे सब उपाय किए। शास्त्र और शस्त्र में कुशल वैद्यों से चिकित्सा कराई गई। चारों प्रकारों से मेरा इलाज किया गया। किन्तु सर्व प्रयत्न बेकार रहे। मेरी वेदना में कमी न हुई। यही मेरी अनाथता थी, असमर्थता थी, विवशता थी।

श्रेणिक कहता है—मुनिवर ! इस वक्त आप स्वस्थ दिखाई देते हैं इससे मालूम होता है कि आपका रोग असाध्य तो न था। क्योंकि असाध्य रोग तो अपने साथ शरीर को ले डूबता है। जब आपका रोग स्वयं मिट गया तो वे वैद्य लोग उसे मिटाने में असमर्थ क्यों रहे ? मुनि ने उत्तर दिया कि वे वैद्य स्वयं अनाथ थे तो मुझे रोगमुक्त कैसे बना सकते थे। वे स्वयं आध्यात्मिक रोग से ग्रस्त थे वैसी हालत में मुझे आत्मिक स्वास्थ्य कैसे प्रदान कर सकते थे। क्या डाक्टरों-वैद्यों को रोग नहीं होता ? जो अपना रोग नहीं मिटा सकता वह दूसरों का क्या मिटायेगा।

आप श्रोताओं के दिल में यह शंका अवश्य उपस्थित हो रही होगी कि यदि डाक्टर वैद्य रोग मिटाने में सर्वथा असमर्थ होते हैं तो इतनी दुनिया उनके पास क्यों दौड़ी जाती है ? इसका समाधान इतना ही है कि वैद्य डाक्टर शारीरिक रोग मिटाने में निमित्त मात्र बन जाते हैं। वे रोग का वास्तविक कारण नहीं मिटा सकते। हमें ऐसा लगने लगता है कि वैद्य डाक्टर की दवा से हम स्वस्थ हो गये हैं। किन्तु इसमें हमारी समझ में भूल है। आत्मिक स्वस्थता के बिना शारीरिक स्वस्थता असंभव है। मानसिक विकार भी रोग के कारण हैं। दुर्भावनाओं को मिटाये बिना असली स्वास्थ्य का लाभ नहीं हो सकता। वैद्यों में यह ताकत नहीं है कि वे अपनी दवाओं से हमारे अशुद्ध विचारों को मिटा दें।

मुनि कहते हैं-राजन् ! यह अच्छा ही हुआ कि वैद्यों

की दवा से मेरी वेदना न मिटी। यदि मिट जाती तो मैं पुनः गफलत में फंस जाता और वेदना का वास्तविक कारण न जानकर फिर कभी रोग-पीड़ित बन जाता। और स्वयं अनाथ वैद्यों को मैं अपना नाथ मान बैठता। यह उस महाशक्ति की कृपा है कि उसने ऐसा न होने दिया।

शास्त्र में रोग नाश दो प्रकार से बताया गया है। एक एकान्तिक रोगनाश और दूसरा आत्यन्तिक रोग नाश। एकान्तिक रोगनाश का अर्थ यह है कि जो रोग मिट गया वह पुनः न हो। और आत्यन्तिक रोगनाश का अर्थ यह है कि सभी प्रकार का रोगनाश होने के बाद पुनः कभी भी किसी प्रकार का रोग ही न हो। क्या वैद्य डाक्टरों में यह ताकत है कि वे इस प्रकार के रोगनाश कर सकें? वस्तुतः डाक्टर दवा के जरिये रोग को दबा देते हैं। सातावेदनीय कर्म का उदय होने से रोग दब जाता है और सुख मालूम देने लगता है। किन्तु रोग का बीज जीवित रहता है जो निमित्त पाकर कालान्तर में पुनः पनप उठता है।

लोग अपनी नासमझी के कारण डाक्टर वैद्यों के गुलाम बने रहते हैं और उनको अपना तारनहार मानने लग जाते हैं। यह कैसी परतन्त्रता है, यह बात एक उदाहरण के जरिये आपको समझाना चाहता हूं।

मान लीजिये कि एक अमीर का लड़का है। वह अमीर होने के कारण अपने हाथों से कोई काम नहीं करता

है। यहां तक कि अपनी धोती अपने हाथों से नहीं बांधता किन्तु नौकर से बंधवाता है। उसे अपनी अमीरी का बड़ा अभिमान है। किन्तु एक दिन बाजार में जाते-जाते उसकी धोती खुल गई। नौकर साथ में हाजिर न था। उसको धोती बांधना आता न था क्योंकि कभी अपने हाथों से बांधी न थी। वह नंगा दिखाई देने लगा। इतने में उसका कोई दोस्त आ गया। उसने उसकी धोती बांध दी। अमीर के लड़के ने अपने दोस्त की दीनता स्वीकार कर ली और कहा कि आप तो मेरी लज्जा ढांकने वाले हैं। अब एक ऐसा व्यक्ति है जो अपनी धोती आप बांध लेता है। यदि कभी बाजार में उसकी धोती खुल भी जाय तो वह स्वयं अपनी लज्जा ढांकने में समर्थ है। कहिये, इन दोनों में से आप किसको अच्छा मानेंगे जो अपने हाथों से कुछ भी कार्य नहीं करता और आलस्य में जीवन व्यतीत करता है उसे अच्छा मानेंगे या हाथ-पैरों से काम लेने वाले को ?

यही बात रोग और वैद्य डाक्टर के सम्बन्ध में भी-समझो बीमार होना आत्मा की एक प्रकार की नग्नता है। जो कमजोर होता है वही बीमार होता है बलवान् आदमी बीमार नहीं होता। अथवा जो खानपान रहन-सहन आदि में गोटाला करते हैं वे बीमार होते हैं। जो खानपान रहन-सहन में पूरी सावधानी रखते हैं वे तन्दुरुस्त रहते हैं। पहले असावधान रहना और फिर रोग होने पर डाक्टर वैद्यों की पराधीनता स्वीकार करना दूसरे से अपनी धोती बंधवाने के समान है।

जो स्वतंत्र हैं, पूर्ण वलवान हैं, सावधान हैं, उनको रोग होते ही नहीं हैं। जैसे तीर्थंकरों को रोग नहीं होते। यदि पूर्व कर्मोदय के कारण कोई रोग हो गया तो वे स्वयं ही उसे मिटा देने में समर्थ होते हैं। डाक्टर वैद्यों के सहारे की उनको जरूरत नहीं पड़ती।

अनाथी मुनि कहते हैं, राजन्! वैद्यों की दवा से मेरा रोग न मिटा यह उत्तम ही हुआ। नहीं तो मैं भी साधारण व्यक्तियों की तरह उनका गुलाम वन जाता। राजन्! लोग कहते हैं कि चारों प्रकार के उपाय वरावर किये जायं तभी रोग मिट सकते हैं। मेरे लिए वे चारों उपाय काम में लिए गये थे। चारों उपाय ये हैं। १ वैद्य योग्य हो २ दवा पूरी हो ३ रोगी दवा लेने के लिए उत्सुक हो ४ परिचर्या पूरी हो। राजन्! मेरे लिए योग्य से योग्य वैद्य वुलाये गये थे। दवाएं भी उनके पास पूरी थी। मैं दवा लेने के लिए उत्सुक था और दवा ली थी तथा मेरी परिचर्या में किसी प्रकार की कोई कसर न थी। चारों उपाय परिपूर्ण रूप से किये गये थे फिर भी मेरा रोग नहीं मिटा यही मेरी अनाथता थी। और वैद्यों की भी अनाथता थी।

लोग कहते हैं आजकल विज्ञान ने वड़ी तरक्की की है। रोग निदान में भी बड़ी तरक्की हुई है। अनेक प्रकार के इंजेक्शनों का आविष्कार हुआ है। अनेक प्रकार की नवीन दवाएं उत्पन्न की गई हैं। किन्तु ठंडे दिमाग से सोचने पर मालूम होगा कि जितने डाक्टर और दवाएं वढ़ी हैं उतने ही

रोगी और रोग भी बढे हैं। जितने वकील बैरिस्टर बढ़े मुकद्दमे भी उतने ही बढ़े हैं। पुराने जमाने में आज जितने वैद्य डाक्टर या वकील बैरिस्टर न थे अतः रोग और मुकद्दमे भी उतने न थे। आजकल नई नई बीमारियां उत्पन्न हो रही हैं जिनका कभी नाम भी न सुना था। मुकद्दमे बाजी भी खूब बढ़ी हुई है। कहिये, डाक्टरों की वृद्धि से रोगियों और रोगों में कितनी कमी हुई है ? कमी नहीं हुई, उल्टी वृद्धि हुई है। ऐसी हालत में कैसे कहा जा सकता है कि वैद्य डाक्टर की दवा से रोग नष्ट हो जाता है।

लोग बिमारी की सच्ची दवा भूल गये हैं और भय के कारण न लेने लायक अनेक दवाएं अपने पेट में डालकर और रोगों की वृद्धि कर रहे हैं। रोगों की सच्ची और व्यावहारिक दवा यह है कि खान-पान पर अंकुश रखना। कब खाना, कितना खाना और कैसा खाना, खाना इसका विचार रखना चाहिये। मैंने एक पुस्तक में पढ़ा है कि खाना खाने वाले व्यक्ति दो प्रकार के होते हैं। एक अमीर और दूसरे गरीब। गरीबों को भोजन तब करना चाहिए जब भोजन प्राप्त हो जाय। और अमीरों को भोजन तब करना चाहिए जब भूख लग जाये।

मैं आजकल देखता हूं कि अमीरों के घरों में बिना भूख खाना खाने का कैसा प्रचार है। भूख लगे या न लगे समय होने पर अवश्य भोजन कर लेते हैं। अनेक प्रकार के अचार चटनी और चूर्णों का आविष्कार करके उनके जरिये भूख जगाने का प्रयत्न किया जाता है। और बिना भूख के भी

अधिक खाने का प्रयास किया जाता है। बिना भूख के भोजन करना रोग को निमन्त्रण देना है जब भूख लगे तब भोजन करने से लूखी सूखी रोटी भी बड़ी अच्छी लगती है।

इस बात का हम साधु लोगों को अच्छा अनुभव है कि कड़ी भूख में लूखा-सूखा अन्न भी कितना स्वादिष्ट मालूम होता है एक दफा हम बाईस मील का विहार करके एक गांव में पहुंचे। सारे गांव में गोचरी कर लेने पर डेढ़ रोटी और खट्टी छाछ मिली। उस खट्टी छाछ में वह डेढ़ रोटी चूर कर हम सब साधुओं ने थोड़ा-थोड़ा खाया। उस स्वाद का मैं क्या बयान करूं कुछ कहा नहीं जाता। बड़ा स्वाद मालूम हुआ था। यह स्वाद रोटी में था या भूख में? मेरे खयाल से स्वाद भूख में था। बिना भूख के पक्वान्न और मिष्टान्न भी अच्छे नहीं लगते।

बिना भूख भोजन करलेने से अजीर्ण रोग हो जाता है। अजीर्ण और कब्जियत सब रोगों की जड़ है। रोग होने पर डाक्टरों की शरण लेनी पड़ती है। भगवान् महावीर स्वामी ने नीरोग रहने की दवा एक मास में छ उपवास कर-लेना बताया है। एक मास में छ उपवास करने से रोग निकट नहीं आ सकता। ठाणांगसूत्र में नवकारणों से रोग उत्पन्न होना बताया गया है। कई लोग वेदनीयकर्म का नाम लेकर या उसका दोष निकाल कर संतोष कर लेते हैं किन्तु रोग के कारणों पर प्रकाश डालने जितना अभी समय नहीं है। यह विषय लम्बा है। अभी तो इतना ही कहता हूं कि डाक्टरों की

शरण में जाना अपनी कमजोरी है।

मुनि कहते हैं-राजन्! जब किसी उपाय से मेरा रोग शमन न हुआ तब मैं इस निश्चय पर पहुंचा कि शरीर रोग और वैद्य भिन्न हैं और मैं भिन्न हूं। इसका मेरा क्या सम्बंध? इस तरह मैंने अपनी अनाथता समझी। राजन्! मेरी आप बीती सुन कर तू भी अपना अभिमान त्याग कर अपने को अनाथ समझ।

भाईयों! अनाथी मुनि के हितकारी वचन सुनकर श्रेणिक राजा ने अपना अभिमान त्याग कर अपने को अनाथ मान लिया था। किन्तु आप लोग अपने को अनाथ मानते हो या नहीं? जब तक अपनी अनाथता या कमजोरी को समझ कर उसको मिटाने का उपाय न किया जायगा, आत्मा का वास्तविक कल्याण नहीं हो सकता।

आप लोग मेरे मित्र हैं। आज का जमाना बुद्धिवाद का है। हमारे शिष्य, हम जो कुछ कहते हैं उसे विना तर्क किये मान लेते हैं। किन्तु मित्र लोग किसी बात को तर्क वितर्क किये विना नहीं मानते। तर्क वितर्क, चर्चा वार्ता करने के बाद जब बात समझ में आ जाती है तभी मानते हैं। आप हमारे शिष्य न बनो तो मित्र तो बनो। तर्क वितर्क करने बाद तो हमारी बात स्वीकार कीजिये। बुद्धि की कसौटी पर खरी उतरे वह बात तो स्वीकार करो और अमल में लाओ।

चरित्र—

अब मैं आत्मा को सनाथ बनाने की बात चरित्र के द्वा
बताता हूं। सेठ सुदर्शन नीति धर्म में निपुण और समय
गतिविधि का जानकार था। किन्तु जो कुटिल कुचाली ल
होते हैं वे किस प्रकार सरल और सज्जन व्यक्तियोंको
अपने जाल में फंसाने के लिए कपट क्रिया से काम लेते
यह कपिला के चरित्र से देखिये। कोई कितनी भी कपट क्रि
करे किन्तु सत्य सदा अबाधित रहता है। 'सत्यं जयति नानृ
सदा सत्य की विजय होती है, झूठ की कदापि नहीं होत
इतना होते हुए भी सज्जनों को सदा इस बात की सावधा
रखनी चाहिए कि कोई कपटी कुटिल व्यक्ति उनको अप
जाल में फंसा न ले। किसी को अपनी तरफ से जाल में
फंसाना सज्जनता है। किन्तु अपनी असावधानी
दूसरों की जाल में फंस जाना सरलता या सज्जनता न
कही जा सकती। यह प्रमाद अवस्था हुई जिसे कभी अच्छा न
कहा जा सकता।

किन्तु यदि दैव योग से किसी के जाल में फंस गये त
किस तरह अपना छुटकारा कराना चाहिए यह सुदर्शन
चरित्र से सीखें।

प्रीति बंधाना सेठ सयाना, आया कपिला साथ।
अन्दर लेकर हाव भाव से, बोली मन्मथ बातरे॥ धन०॥२४

महिषी सींग में डांस डंक सम, लगे न इस को बोध।
क्या उपाय से यहां से निकले, करले मन में शोधरे॥ धन० ॥२५॥

कपिला की कुटिल चाल में फंस कर सेठ उसके घर पर आगये। उसने उनको कमरे में बंध कर रखा है। सेठ थे तो सयाने किन्तु कपिल की प्रीति से बंधे हुए थे। प्रेम और बुद्धि में बड़ा अंतर है। बुद्धि किसी बात की पूरी छान बीन करती है। किन्तु प्रेम छान बीन में नहीं पड़ता। अतः अपने मित्र कपिल के शरीर में शुल्य चलने की बात सुनते ही प्रेम के वशीभूत होकर बिना कुछ भी सोचे सेठ झट उसके घर चले आये।

सुदर्शन से कपिल भी प्रेम करता था और उसकी स्त्री कपिला भी। किन्तु दोनों के प्रेम में कितना अंतर है। प्रेम शब्द सुन कर ही मोहित न हो जाना चाहिए किन्तु उसके पीछे क्या भावना है, यह खयाल करना चाहिए। दूध गाय का भी होता है और आक का भी। एक के दूध से शरीर को पुष्टि मिलती है और दूसरे के दूध से शरीर की हानि होती है। एक जीवन प्रदान करता है दूसरा जीवन हरण करता है, जिस दूध से मूल धातु को हानि पहुंचे वह दूध नहीं विष है जिससे मूल धातु की वृद्धि हो वह दूध है।

इसी प्रकार जिस प्रेम से आध्यात्मिक मानसिक और शारीरिक शक्ति की वृद्धि हो, सत्य और धर्म की पुष्टि हो वह प्रेम सच्चा प्रेम है। ऐसा प्रेम आदरणीय है। किन्तु जिस प्रेम

में चरित्र का नाश हो, धर्माधर्म का कोई विचार न रहता हो वह प्रेम नहीं है। उसे कुसंगति कहना ठीक होगा। मौज और ऐश आराम करना ही जिस प्रेम का लक्ष्य हो उसके लिए प्रेम शब्द का प्रयोग करना नितान्त अनुचित है। वह मोह है। ऐसा मोह त्याज्य है।

कपिल का सुदर्शन के साथ जो प्रेम-भाव था वह शुद्ध था, निखालस था। उसमें न स्वार्थ भावना थी, न विषय-वासना की भावना। किन्तु कपिला का सुदर्शन पर जो प्रेम भाव था वह अशुद्ध था। उस प्रेम में शारीरिक आकर्षण था। विषय सेवन करने की भावना थी। उसके साथ वह मौज मजा करना चाहती थी। वह अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए शुद्ध भाव से कहे हुए पति के इन शब्दों का कि 'मित्र को मेरे समान समझना' उल्टा अर्थ ग्रहण कर लेती है। इस वाक्य का अर्थ विषय सेवन की स्वीकृति मान लेती है।

दुष्ट लोग दूसरों के द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अर्थ अपनी अशुद्ध भावनाओं के अनुसार किया करते हैं। कई लोग शास्त्र वाक्यों का अर्थ भी अपनी भावना के अनुसार कतई उल्टा कर डालते हैं। वैसे शास्त्रों में सबके लाभ की बातें ही बताई हुई हैं किन्तु लोग अपनी अपनी भावना के अनुसार अर्थ निकाल लेते हैं। जैसे मनु स्मृति में कहा है—

'न मांस भक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने'

बस, मांस मद्य और मैथुन के शौकीन लोग यह वाक्य सुनकर

बड़े प्रसन्न हो गये और अपनी इच्छा पूर्ति के लिए मनुस्मृति के वचन की आड़ लेने लगे। किन्तु इसके आगे क्या कहा है इस पर वे क्यों ध्यान देने लगे। आगे के वाक्य से उनकी भावना की पुष्टि नहीं होती अतः उस पर ध्यान नहीं देते। आगे कहा है—

'प्रवृत्तिरेष भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला।'

मद्य मांस और मैथुन की निवृत्ति से महाफल होता है। किन्तु जिन्हें विषयों में प्रवृत्ति करना है वे निवृत्ति की तरफ क्यों ध्यान दें।

भावना के अनुसार किस प्रकार अर्थ किया जाता है इसके लिए एक दृष्टान्त आपके सामने रखता हूं।

एक पंडितजी महाभारत की कथा वांच रहे थे। श्रोताओं में एक सेठ और सेठानी भी थे। जब कथा समाप्त हो गई तब पण्डित जी ने पूछा कि सेठ जी! आपको कथा में से कौनसी बात अच्छी लगी? सेठ ने कहा पण्डितजी! मुझे सब पात्रों में दुर्योधन और उसका बर्ताव सब से अच्छा लगा। जब तक वह जीन्दा रहा एक सूई की नोंक जितनी भूमि भी उसने पाण्डवों को न दी। पण्डितजी समझ गये कि इसमें इसकी भावना का दोष है। इसने अपनी भावना के अनुसार दुर्योधन को पसन्द किया। फिर सेठानी से पूछा कि तुम्हें कौनसा पात्र या बात पसन्द पड़ी है? सेठानी ने कहा मुझे द्रौपदी

अच्छी लगी। क्योंकि उसके पांच पति थे। यदि एक मर जाय तो चार बचे रहते हैं और दो मर जायँ तो तीन जिन्दे रहते हैं। इस तरह कभी विधवा होने का प्रसंग ही नहीं आसकता।

पंडितजी समझ गये कि ये दोनों सेठ सेठानी अपनी-अपनी वृत्ति और विचारों के अनुसार पात्रों को पसन्द कर रहे हैं। इसमें कथा का कोई दोष नहीं है श्रोताओं की भावना का दोष है। कथा में युधिष्ठिर और अर्जुन जैसे भले व्यक्ति और कुन्ती गांधारी जैसी अनेक पतिव्रता स्त्रियां भीहैं। किन्तु जिसकी जैसी भावना वैसी उसकी पसन्दगी है। द्रौपदी के पांच पति होने का कारण न समझकर सेठानी ने कितना गलत अर्थ ग्रहण किया है। यहीं बात कपिला के लिए भी लागू होती है कि उसने अपने पति के मनोभावों को न समझ कर अपनी वासना के अनुसार यह अर्थ लगा लिया कि पति ने मुझे सुदर्शन के साथ व्यभिचार करने की स्वीकृति दे दी है।

कपिला के द्वारा मकान में बंद किये जाने पर भी सेठ सुदर्शन घबड़ाये नहीं किन्तु छुटकारे के उपाय सोचने लगे और यह भी विचार करने लगे कि प्राण भले ही चले जायं मगर अपने शील व्रत का भङ्ग न होने दुंगा।

जो वीर पुरुष होते हैं वे विपत्ति आने पर घबड़ाते नहीं हैं। विपत्ति में धैर्यधारण करते हैं। विपत्ति में घबड़ाने से विपत्ति कम तो होती नहीं। उल्टा घबड़ाने से बुद्धि बिगड़ जाती है और न करने लायक कार्य हो जाता है। धैर्य रखकर

विपत्ति-विनाश के लिए उपाय सोचने से विपत्ति से पार पा सकते हैं। सुदर्शन वीर था, धैर्य से काम ले रहा है।

कपिला ने सुन्दर वस्त्राभूषण पहन रखे थे। वह सेठ से कहने लगी कि आपके मित्र बीमार नहीं हैं। वे बाहर गांव गये हुए हैं। यह अच्छा अवसर हाथ लगा है कि आप हम आनन्द करें। मैं आपको इसी मतलब से बुला लाई हूं। देखते क्या हैं? मेरे साथ विषय सेवन करके अपने यौवन को सफल बनाईये मुझे अपनी प्रेयसी स्वीकार कीजिये।

मित्रो! हलाहल विष खाकर उसे पचा डालना सम्भव है, हाथों से समुद्र पारकर डालना भी शक्य है किन्तु शील-व्रत की रक्षा का कार्य इनसे कठिन है। क्रोध के आवेश को दबा देना सरल है, अपमान की कड़वी घूंट पी जाना सरल है, माया जाल में से निकल छूटना सरल है और लोभ की अनन्त तृष्णा को पार करना भी सरल है मगर कामवासना के आवेग को दबा देना या जीत लेना बड़ा कठिन है। वीर्य को पचाना सबसे अधिक कठिन कार्य है। जो व्यक्ति वीर्य को पचा डालता है वह धन्यवाद का पात्र है। भगवान ने कहा है कि शीलव्रत सबसे बड़ा व्रत है। शीलभंग के अवसर पर भी जो दृढ़ रहता है शीलभंग नहीं करता, वह कठिन से-कठिन काम करता है।

सुदर्शन विचार करने लगे कि इस समय इन को कामवासना का आवेग चढ़ा हुआ है अतः उपदेश देकर

समझाना बेकार है। उपदेश तब सार्थक होता है जब सुनने वाला प्रकृतिस्थ हो। जिसको काम रूपी भूत लगा हुआ है वह किसका उपदेश सुन सकता है? भैंस के सींग में मच्छर के काटने का भला क्या असर हो सकता है? इस समय इसके सामने उपदेशवाणि उपस्थित करना वाणि को ही दूषित बनाना है। मगर करना क्या? किस प्रकार इसके फन्द से छूटूं? यदि छुटकारा पाने के लिए शारीरिक बल का प्रयोग करता हूं तो हल्ला सुनकर लोग इकट्ठे हुए बिना न रहेंगे जिससे मेरे मित्र की और इसकी इज्जत हतक होगी। तथा आवेश में आकर मेरे सम्बन्ध में भी न मालूम क्या कह डाले। इसने मर्यादा छोड़ दी है अतः मुझ पर व्यभिचार करने का दोषारोपण भी कर सकती है और इससे मेरी इज्जत में भी बट्टा लगा सकती है।

सुदर्शन ऐसे उपाय की खोज में है कि जिससे अपने दोस्त, अपनी और दोस्त की पत्नी की इज्जत आबरु भी कायम रह जाय और शीलव्रत की भी रक्षा हो जाय।

लोगों ने अपनी आत्मा को बिगाड़ रखा है अतः वक्त पर अच्छी बुद्धि नहीं सूझती। अगर आत्मा पवित्र हो तो वह ऐसी उत्तम सलाह दे सकती है जैसी कोई सन्मित्र भी नहीं दे सकता। सुदर्शन की आत्मा पवित्र थी, साफ थी अतः उसे एक उपाय सूझ आया।

अप्सरा सम तुम नारी प्यारी, मम नवयौवनाकाय।
कौन चूके ऐसे अवसर को, मिल्यो योग सुखदायरे ॥ धन ॥२५॥

हतभागी हूं मैं सुन सुभगे ! अन्तराय के जोग ।
पंडपना है मेरे तन में, व्यर्थ मनोरथ तोरे रे ॥ धन ॥ २६ ॥
हे दुर्भागी ! जा दुर्भागी, धिक् मैं खोई बात ।
धिक् मेरे अज्ञान पतिको, रहता तेरे साथ ॥ धन० ॥ २७ ॥
देवगुरु की मुझे प्रतिज्ञा, कहूं न तेरी बात ।
तुम भी निश्चय नियम करोरी, लाज मेरी तुम हाथ रे ।
धन० ॥ २८ ॥
नियम कराया बाहर आया, मन पाया विश्राम ।
बाधिन के मुख से मृग बचके, पाया निज आराम रे ।
धन० ॥ २९ ॥

सुदर्शन ने प्रेम भरे नेत्रों से कपिला की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—प्यारी ! मैं कैसा हतभागी हूं कि अप्सरा के समान तुम जैसी सुन्दरी नारी स्वतः अपनी इच्छा से प्रेरित होकर मुझ से शारीरिक सम्बन्ध की प्रार्थना कर रही है और मेरा यह शरीर भी यौवन से युक्त है फिर भी मैं किसी कारण वश इस आनन्द से वंचित रहता हूं और तुम्हारी मनोकामना पूरी करने में मजबूर हूं। क्या करूं तुम जैसी रूपलावण्यवती ललना सारे शहर में खोजने पर भी मिलना असंभव है। तुम्हारी और मेरी उम्र भी समान है। ऐसो आराम के सामान की यहां कमी नहीं है। तुम मुझ को अपना पति बनाना चाहती हो। अपना सर्वस्व मुझे समर्पण करने को उद्यत हो। तुम को जिस प्रकार कामदेव सता रहा है उसी प्रकार मेरे मन में भी वासना का उभाड़ आता है। और यह शरीर का

धर्म भी है। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसे काम ने न सताया हो कहा। है-

> शम्भूः स्वयम्भूहरयो हरिणेत्तणानां,
> येनाक्रियन्तः सततं गृहकर्मदासाः।
> वाचमगोचर चरित्र विचित्रताय,
> तस्मै नमो भगवते कुसुमायु धाय॥
> (श्रृंगार शतक)

भर्तृहरि कहते हैं कि मैं उस कुसुमायुध कामदेव को नमस्कार करता हूं जिसने ब्रह्मा विष्णु और महेश तक को स्त्रियों के समक्ष पानी भरवाया। बेचारे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जिस काम के कटाक्षों से अपने को न बचा सके, तो मैं क्या चीज हूं। किन्तु प्यारी! मैं विवश हूं, लाचार हूं। मैं बड़ा हतभागी हूं कि इस सुन्दर सुअवसर का लाभ नहीं ले सकता।

कपिला ने पूछा—ऐसी क्या बात है जो आप इतनी लाचारी प्रकट कर रहे हैं? और अपने भाग्य को दोष दे रहे हैं?

सुदर्शन ने उत्तर दिया—क्या बताऊं, कुछ कहा नहीं जाता। कहते हुए जबान रुक जाती है। बड़ी शर्म लगती है। यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मैं यह बात किसी के समक्ष प्रकट न करूंगी तो मैं कह सकता हूं। मैं भी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं कि तुम्हारी बात किसी के समक्ष न कहूंगा। तुम भी ऐसी प्रतिज्ञा करो। फिर बात बताऊं।

कपिला ने कहा—क्या बात है सो शीघ्र कह डालो। तुम्हे किस बात की कमी है सो कहो मैं अभी पूरी किये देती हूं।

सुदर्शन ने कहा—कुदरत की कमी को तुम कैसे पूरी कर सकोगी? फिर भी यदि पूरी कर सको तो करना किन्तु पहले मेरे सामने सौगन्ध खालो कि बात किसी से नहीं कहूंगी।

कपिलाने कहा—मैं देव गुरु और धर्म आदि की शपथ खा कर कहती हूं कि तुम जो बात कहोगे मैं किसी से न कहूंगी।

इसी प्रकार सुदर्शन ने भी कपिला के सामने शपथ खाकर कहा कि मैं तुम्हारी बात किसी के सामने न बताऊंगा। यहां तक कि मेरे अभिन्न मित्र कपिल के सामने भी जिक्र न करूंगा।

इस तरह परस्पर प्रतिज्ञा करके सुदर्शन ने कहा कि मेरा दुर्भाग्य है जो मैं बीमारी के कारण भूख होने पर भी परोसे हुए स्वादिष्ट भोजन को खाने में लाचार हूं।

कपिला ने कहा—क्या बीमारी है? कहते क्यों नहीं?

सुदर्शन ने कहा—मैं नपुंसक हूं, पुरुषत्व से हीन हूं।

यह बात सुनते ही क्रोध में आकर कपिला ने कहा—चल निकल यहां से। तेरे जैसे नपुंसकों की यहां जरूरत नहीं

धर्म भी है। ऐसा कौन व्यक्ति होगा जिसे काम ने न सताया हो कहा। है-

शम्भूः स्वयम्भूहरयो हरिणेक्षणानां,
येनाक्रियन्तः सततं गृहकर्मदासाः।
वाचमगोचर चरित्र विचित्रताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायु धाय॥
(शृंगार शतक)

भर्तृहरि कहते हैं कि मैं उस कुसुमायुध कामदेव को नमस्कार करता हूं जिसने ब्रह्मा विष्णु और महेश तक को स्त्रियों के समक्ष पानी भरवाया। बेचारे ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जिस काम के कटाक्षों से अपने को न बचा सके, तो मैं क्या चीज हूं। किन्तु प्यारी! मैं विवश हूं, लाचार हूं। मैं बड़ा हतभागी हूं कि इस सुन्दर सुअवसर का लाभ नहीं ले सकता।

कपिला ने पूछा—ऐसी क्या बात है जो आप इतनी लाचारी प्रकट कर रहे हैं? और अपने भाग्य को दोष दे रहे हैं?

सुदर्शन ने उत्तर दिया—क्या बताऊं, कुछ कहा नहीं जाता। कहते हुए जबान रुक जाती है। बड़ी शर्म लगती है। यदि तुम यह प्रतिज्ञा करो कि मैं यह बात किसी के समक्ष प्रकट न करूंगी तो मैं कह सकता हूं। मैं भी तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा पूर्वक कहता हूं कि तुम्हारी बात किसी के समक्ष न कहूंगा। तुम भी ऐसी प्रतिज्ञा करो। फिर बात बताऊं।

कपिला ने कहा-क्या बात है सो शीघ्र कह डालो। तुम्हे किस बात की कमी है सो कहो मैं अभी पूरी किये देती हूं।

सुदर्शन ने कहा-कुदरत की कमी को तुम कैसे पूरी कर सकोगी? फिर भी यदि पूरी कर सको तो करना किन्तु पहले मेरे सामने सौगन्ध खालो कि बात किसी से नहीं कहूंगी।

कपिलाने कहा—मैं देव गुरु और धर्म आदि की शपथ खा कर कहती हूं कि तुम जो बात कहोगे मैं किसी से न कहूंगी।

इसी प्रकार सुदर्शन ने भी कपिला के सामने शपथ खाकर कहा कि मैं तुम्हारी बात किसी के सामने न बताऊंगा। यहां तक कि मेरे अभिन्न मित्र कपिल के सामने भी जिक्र न करूंगा।

इस तरह परस्पर प्रतिज्ञा करके सुदर्शन ने कहा कि मेरा दुर्भाग्य है जो मैं बीमारी के कारण भूख होने पर भी परोसे हुए स्वादिष्ट भोजन को खाने में लाचार हूं।

कपिला ने कहा—क्या बीमारी है? कहते क्यों नहीं?

सुदर्शन ने कहा—मैं नपुंसक हूं, पुरुषत्व से हीन हूं।

यह बात सुनते ही क्रोध में आकर कपिला ने कहा—चल निकल यहां से। तेरे जैसे नपुंसकों की यहां जरूरत नहीं

है। सुदर्शन को यही चाहिए था। भूखे को भोजन मिला। चट से सुदर्शन बाहर निकल भागा और इस तरह प्रसन्न हुआ जिस तरह मृग का बच्चा बाघ के मुख से छुटकारा पाकर अपनी मां से मिलकर प्रसन्न होता है।

मित्रों! अब यह प्रश्न होता है कि सुदर्शन जैसा सच्चा और प्रतिष्ठित व्यक्ति झूठ क्यों बोला। वह नपुंसक न था फिर भी अपने को नपुंसक बताया, यह साफ झूठ था। इसका समाधान अवसर पर किया जायगा। अभी तो इतना ही ध्यान में रखें कि कठिनाई में फंसने पर भी अपने शील की रक्षा करनी चाहिए। विकार का कारण उपस्थित होने पर भी जो विकृत न हो वही वीर है सुदर्शन से शिक्षा लेकर शील का पालन करेंगे तो कल्याण ही कल्याण है।

१०-८-३६
राजकोट

८
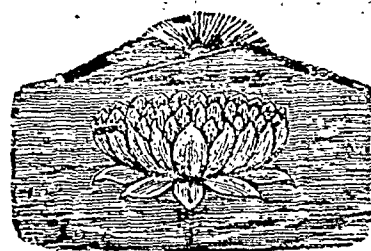
प्रकृति की अपेक्षा आत्मा में अनन्तगुणी शक्ति है

'अश्वसेन' नृप कुलतिलोरे 'वामा' देवी नो नंद।
चिन्तामणि चित्त में वसेरे, दूर टले दुःख द्वंद ॥
जीवरे तू पार्श्व जिनेश्वर वंद ॥ १ ॥

प्रार्थना—

यह तेईसवें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ की प्रार्थना है। स्तुति, स्तवन, प्रार्थना, अभ्यर्थना आदि किसी शब्द का प्रयोग किया जाय, उसका उद्देश्य भगवान पार्श्वनाथ से भेंट करना होना चाहिए। क्या भगवान पार्श्वनाथ से भेंट करने की इच्छा या प्रयत्न करना मोह या राग नहीं है? भगवान में मिलने की इच्छा करना, मोह या राग नहीं कहा जा सकता। कदाचित इसे प्रशस्त राग कह सकते हैं। यह राग वितराग-

दशा को प्राप्त कराता है। वीतरागता आत्मा की उत्कृष्ट दशा है। इससे ऊंचा कोई भी साधन नहीं है। पातञ्जलि योग-शास्त्र के समाधिपाद में कहा है:—

वीतरागविषयं वा चित्तं

वीतराग के ध्यान में तन्मय हो जाना समाधि का एक साधन है। यह साधन सरल और सुलभ है। इसी बात को लक्ष्य में लेकर ज्ञानी कहते हैं कि हे जीव! तू भगवान पार्श्वनाथ की शरण में लीन हो जा। भगवान पार्श्वनाथ की शरण में लीन होना, वीतराग की शरण में लीन होना है।

यदि वीतराग में ही लीन होना है तो पार्श्वनाथ का विशेष नाम क्यों लिया गया? इसका समाधान यह है कि यद्यपि वीतराग अनन्त हैं फिर भी हम जिस भूमिका पर हैं हमारे लिए किसी विशेष नाम का अवलम्बन लेना आवश्यक है।

भगवान पार्श्वनाथ का पूरा चरित्र चित्रण करने जितना अभी समय नहीं है। अभी इतना ही कहता हूं कि वे वीतराग के उत्कृष्ट साधक थे। उनके द्वारा की गई साधना को अपनाने के लिए ही उनका नाम लिया जाता है। अनेक कवियों ने अनेक तरीकों से भगवान पार्श्वनाथ की स्तुति की है। किन्तु सब का सार यही है कि उनकी जैसी वीतरागदशा प्राप्त की जाय।

ग्रंथकारों ने भगवान पार्श्वनाथ के दसभवों का व किया है। इससे पूर्व नववें भव में इनका न

मरुभूति के बड़े भाई का नाम कमठ था। कमठ अपने छोटे भाई पर सदा नाराज रहा करता था। मरुभूति अच्छा काम करता तब भी रुष्ट ही रहा करता था। एक दिन अति रुष्ट होकर कमठ ने अपने भाई मरुभूति के सिर पर शिला दे मारी फिर भी मरुभूति ने सहनशीलता का त्याग न किया। और अपने बड़े भाई पर क्रोध नहीं किया। इस सहनशीलता के कारण मरुभूति तरक्की करते गये और कमठ गिरता ही गया।

आज कल लोग सहनशीलता को अधिक महत्व नहीं देते और जरा-जरासी बात पर आपे से बाहर हो जाते हैं। 'मैंने क्या अपराध किया सो मुझ पर रुष्ट होते हो और मार मारते हो?' चट से ये शब्द कह डालते हैं। किन्तु ज्ञानी जन यह विचार करते हैं कि संभव है कोई न कोई मेरा अपराध रहा होगा इसलिए सामने वाला नाराज हुआ होगा। मेरे कर्मों की निर्जरा होती है। मैं क्यों नाराज होऊं इस प्रकार विचार कर के ज्ञानी अनन्त क्षमाशील बने रहते हैं और दूसरे की पुण्याई हरण कर लेते हैं। जो क्षमाशील बना रहता है वह क्रोधी के पुण्य का हरण कर लेता है। क्रोधी गिरता जाता है। और सहन शील बढ़ता जाता है।

दसवें भव में कमठ योगी हुआ और मरुभूति भगवान् पार्श्वनाथ हुए। एक बार कमठ पञ्चाग्नि तप ताप रहा था। उस समय राजकुमार पार्श्व उधर आ निकले।

राजकुमार ने कहा—कमठ! यह क्या मूर्खता कर रहे

हो? तुम्हें मोक्ष मार्ग की करणी का पता नहीं है और इस प्रकार अज्ञान तप कर के शरीर को क्यों कष्ट दे रहे हो?
कमठ ने कहा--राजकुमार! तुम क्या समझो योगमार्ग को। तुम हाथी घोड़े पालो और राज काज संभालो। हम योगियों की बात में दखल मत दो। अगर दखल दोगे तो कुछ अनिष्ट हो जायगा और फिर पछताओगे। पार्श्वकुमार ने कहा-सो तो ठीक है किन्तु तुम स्वयं ग़लतमार्ग पर चलते हो और दुनिया को भी कुमार्ग पर ले जाते हो इसी से मुझे कहना पड़ता है कि यह योगमार्ग नहीं है।

कमठ-मैं भूत भविष्य और वर्तमान की सब बातें जानता हूं। मुझे योगमार्ग सिखने की आवश्यकता नहीं है। राजकुमार! तुम अपना काम संभालो।

पार्श्वकुमार----योगी तुम भूत भविष्य और वर्तमान के जानकार हो तो यह बताओ कि तुम्हारे सामने जल रही इस लकड़ी में क्याहै ?

कमठ-लकड़ी में अग्नि देवता है। और क्या है।

यह सुनकर पार्श्वकुमार ने अपने नौकरों को हुक्म दिया कि इस लकड़ी को अलग निकाल कर चीर डालो। तुरत नौकरों ने लकड़ी को चीर डाला तो उसमें से एक जलता हुआ नाग निकला। यह देखकर पास खड़े सब लोग योगी की सर्वज्ञता पर हंसने लगे और पार्श्वकुमार की बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करने लगे। पार्श्वकुमार ने अग्नि में दाझे हुए सांप को

नवकार मंत्र सुनाया और उससे बहुत प्रेम किया। पार्श्वकुमार की प्रेमवृष्टि से नाग अपनी वेदना भूल गया और मर कर धरणेन्द्र नाम का देव हुआ।

लोगों द्वारा अपनी मजाक सुनकर योगी बहुत रुष्ट हुआ। उसने क्रोध में आकर यह संकल्प कर लिया कि मेरी तपस्या का यदि कुछ फल हो तो मैं मर कर ऐसी योनि में जन्म लूं कि जिससे पार्श्वकुमार को खूब कष्ट दे सकूं।

संसार का यह नियम है कि लोग जब तक अपनी पोल नहीं खुल जाती अनेक प्रकार के धर्म के नाम पर ढोंग चलाते रहते हैं। चमत्कारों के चक्र में साधारण जनता फंस जाती है। और जनता की अज्ञानता का लाभ लेकर ढोंगी लोग गुलछर्रे उड़ाते हैं। किन्तु जब उनकी पोल खुल जाती है और आमजनता सच्चाई जान जाती है तब वे बड़े दुःखी होते हैं। योगी भी अपनी पोल खुल जाने से बड़ा दुःखी हुआ और पार्श्वकुमार को दुःखी करने का संकल्प कर लिया।

योगी मरकर असुर योनी में पैदा हुआ। जब पार्श्वकुमार ने राज्यसम्पत्ति त्यागकर भगवती दीक्षा अंगीकार कर ली और तपस्या करने लगे तब असुरयोनिधारी देव ने उनपर मूसलाधार वर्षा की। किन्तु योगी पार्श्वनाथ किंचित भी विचलित न हुए। उल्टे यह मानने लगे कि यह मेरी आत्मा को उपशान्त बना रहा है। मेरे पूर्वकृत कर्मों को नाश करने में मदद पहुंचा रहा है।

आप लोग भगवान पार्श्वनाथ का स्मरण करते होंगे। किस मतलब से आप स्मरण करते हैं? कहावत है कि 'परचो पूरे पारस नाथ'। क्या परचा पूराने के लिए उनका स्मरण करते हैं? स्त्री हो, धन हो, पुत्र हो और कोई हमारा नुक्सान करनेवाला न हो, तथा कोई बीमारी भी न हो, यह परचा पूराने के लिए तो भगवान का स्मरण नहीं करते हैं? अगर इस मतलब से पार्श्वनाथ को भजा है तो आपने उनको समझा ही नहीं है। धन दौलत और कुटुम्बादि की इच्छा तो अन्य तरीकों से भी पूरी हो सकती है। वीतराग भगवान से ऐसी कामना करना अज्ञानता है। वीतराग का भजन वीतरागता प्राप्त करने के लिए करो। पातञ्जल योगदर्शन में समाधि भाव प्राप्त करने का एक कारण वीतरागध्यान भी बताया गया है। भगवान पार्श्वनाथ के भजन और ध्यान से वीतरागता प्राप्त होती है।

भगवान पार्श्वनाथ की ध्यानाग्नि असुर की मूसलधार वर्षा से अधिकाधिक बढ़ती जाती थी। उनकी आत्म शांति में इस वर्षा से कोई बाधा नहीं पड़ती थी। किन्तु जिस नाग को एक बार नवकार मन्त्र सुनाकर उसपर अभिवृष्टि की थी वह अपना कर्त्तव्य अदा करने से कैसे चुप रह सकता था। धरणेंद्र का आसन कम्पित हुआ। उसने तुरंत नाग का रूप धारण कर भगवान पर अपने फण से छाया कर दी और अपनी पूंछ से उनको ऊपर उठा लिया। लेकिन भगवान पार्श्वनाथ को अपने पर द्वेष रखने वाले असुर से कोई द्वेष भाव न था और न अपनी रक्षा के लिए छत्र धारण करने वाले धरणेन्द्र पर

राग भाव ही। शत्रु और मित्र पर सम भाव है।

अन्त में इन्द्र की फटकार से कमठ असुर अपने कार्यों से बाज आया और भगवान की शरण ग्रहण की। भगवान ने उसको भी शांति प्रदान की और उसकी आत्मा में जागृति पैदा की। वह असुर समकिती होगया। उसका सुधार होगया। सज्जनों की संगति में आकर दुष्ट जनों का उद्धार हो जाता है। जिस पार्श्वनाथ की कृपा से दुष्ट असुर का भी उद्धार हो गया उसकी अखण्ड और अविच्छिन्न प्रार्थना करते चलो। बोलिये—

'चिन्तामणि चित्त में वसेरे दूर टले दुःख द्वन्द'

पार्श्वनाथ के नाम की चिन्तामणि हृदय में धारण करलीजिये। और कष्ट के समय में चाहे कोई काटे मारे या अन्य प्रकार की वेदना दे तो भी विचलित न होइये। यह विचार रखिये कि मेरे हृदय में चिन्तामणि वसते हैं अतः कोई कुछ नहीं विगाड़ सकता। जिसका ध्यान प्रभु की तरफ होगा उसको संसार की कौनसी ताकत है जो सता सकेगी या विचलित कर सकेगी? आत्मा की शक्ति सब भौतिक शक्तियों से बढ़कर है। आत्मा प्रकृति पर विजय प्राप्त कर सकती है। भगवान पार्श्वनाथ के जीवन से जो शिक्षा मिलती है। वही बात प्रकारान्तर से शास्त्र द्वारा वताता हूं।

शास्त्र---

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक से कहते हैं कि राजन्! मैं

इस शरीर का नाथ न था। यदि मैं इसका नाथ होता तो इसके द्वारा कष्ट क्यों पाता। इसी तरह यह शरीर भी मेरा नहीं है। यदि मेरा होता और मैं इसका नाथ होता तो इसे कष्ट क्यों होने देता। मुझे बोध होगया कि भूतकाल में इस शरीर के कारण महान कष्ट सहन किये हैं। शरीर में अपने पन के वहम के कारण ही अनेक विडम्बनाये खड़ी हुई है हैं।

वहमी भय मानेयथा रे सूने घर वैताल।
त्यों मूर्ख आतम विषेरे मान्यो जग भ्रम जाल॥

वहम के कारण कैसे कैसे भय खड़े कर लिए जाते हैं यह आप को सुविदित ही है। जहां भूत नहीं होता वहां भी भूत कि कल्पना कर ली जाती है। सूना घर देखा कि भूत की कल्पना कर ली जाती है। इसी प्रकार मूर्ख मनुष्य आत्मा में जगत जञ्जाल की कल्पना कर लेते है। शरीर को अपना मानना भी एक प्रकार का वहम ही हैं। वहम के कारण ही आत्मा दूसरे को दुःख सुख का दाता मानने लगता है।

'सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता
परो ददातीति कुबुद्धिरेषा'

अर्थात सुख और दुःख का देने वाला कोई नहीं है स्वयं आत्मा ही सुख और दुःख उत्पन्न करता है दूसरा कोई सुख दुःख देता है ऐसी कल्पना करना ही कुबुध्दि है।

शंका—हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि दूसरा व्यक्ति हमारी निन्दा करके हम से शत्रुता रख के हमारी वस्तु चुराकर या किसी अन्य तरह हमको कष्ट पहुंचा कर दुःख देता है। और एक व्यक्ति हमारे लिए अनेक प्रकार के कष्ट सहन करके भी हमें आराम पहुंचाता है। फिर आप कैसे कहते हैं कि दूसरा सुख दुःख नहीं देता। जो बात प्रत्यक्ष अनुभव में आ रही है उसका अपलाप कैसे करते हैं!

समाधान—जिसको तुम दूसरा कह रहे हो वह व्यक्ति और तुम तो अलग हो ही। किन्तु यह तुम्हारा शरीर और आत्मा भी अलग अलग है दुःख देने वाला व्यक्ति तुम्हारी आत्मा को दुःख देता है या शरीर को? शरीर को सुख दुःख देता है तो शरीर आत्मा से भिन्न है। शरीर आत्मा का एक हथियार है, साधन मात्र है। शरीर के दुःख को तुम अपना दुःख समझते ही क्यों हो। और यदि शरीर के कारण ही दूसरा दुःख देता है तो ऐसा प्रयत्न क्यों नहीं करते जिससे फिर शरीर धारण ही न करना पड़े। आत्मा ने जब तक इस शरीर का साथ पकड़ रखा है तब तक अपने साथी के कारण दुःख सहन करना पड़ता है। शरीर का साथ छोड़कर अशरीरी सिद्ध बन जाने पर किसी प्रकार का दुःख नहीं होता।

यह आत्मा की भूल है जो वह शरीर के कष्टों को अपना कष्ट समझता है। शरीर में अभेद भाव रखता है। दूसरा व्यक्ति हमारी आत्मा को क्या कष्ट पहुंचा सकता है

किन्तु यह शरीर रूपी बंधन वीच में आ पड़ता है जिससे वह लाचार हो जाता है और दुःख सहता है।

लेकिन आत्मा का यह सोचना भी त्रुटियुक्त है कि मैं कर्मचेतना और कर्मफल चेतना से कष्ट भोग रहा हूं। कर्मों में और कर्म कृत शरीर में राग द्वेष ही क्यों लाया जाय। कर्म भी तो आत्मा के ही किये हुए हैं। सब खेल मेरा ही रचा हुआ है! मैं जब चाहूं तब इस खेल को खतम कर समेट सकता हूं।

एक आदमी मार्ग में चल रहा था। चलते चलते उसके दिमाग में कल्पना आई कि अंधे की तरह चलूं। वह आंखें बंद करके चलने लगा। चलते चलते एक खंभे से उसका सिर टकरा गया और लहू लहान हो गया। गुस्से में आकर वह खंभे को डण्डे से मारने लगा। यदि आप यह दृश्य देख रहे हों तो उसको क्या कहेंगे? मूर्ख या समझदार! मूर्ख ही कहेंगे। खंभे का क्या दोष था। दोष तो आंखें बंद करके चलने का था।

इसी प्रकार जड़ कर्मों का दोष निकालने से क्या काम चलेगा। जड़ कर्मों को संचित करने वाला स्वयं आत्मा ही है। अतः मुख्य जिम्मेवारी आत्मा की है। कर्मों को आत्मा ने ही अपनी असावधानी और अज्ञानता से बुलाया है।

अनाथी मुनि कहते हैं—राजन! मेरे शरीर में अनन्त वेदना थी। मेरे पिता से मेरा दुःख देखा नहीं जाता था। मेरा दुःख मिटाने के लिए वे सब प्रयत्न करने लगे।

पिया मे सव्वसारं पि, दिज्जाहि मम कारणा ।
न य दुक्खाउ विमोयन्ति, एसा मज्झ अणाहया ॥२४॥

आजकल रुपया सब से बड़ा माना जाता है। पुत्रादि से भी पैसा अधिक प्यारा गिना जाता है। कहावत है—

मात कहे मेरा पूत सपूता, बहन कहे मेरा भैया ।
घर की जोरू यों कहे, सब से बड़ा रुपैया ॥

ऐसा भी पढ़ने सुनने में आता है कि पिता ने पुत्र को और पुत्र ने पिता को पैसे के कारण मार डाला । कई लोग पुत्र का अर्थ ही यह लगाते हैं कि जो कमाकर लावे और दे। ऐसी दशा में बड़ा कौन रहा ? पुत्र या रुपया ?

मुनि कहते हैं— राजन् ! मेरे पिता ऐसे न थे जो रुपयों को बड़ा समझते हों। उन्होंने वैद्य लोगों से कह दिया था कि यदि मेरे पुत्र को अच्छा कर दोगे तो मैं अपना सर्वस्व देकर खाली हाथ घर से बाहर निकल जाऊंगा। वे कहते थे मेरे पुत्र के सामने धन क्या चीज है। पैसा हाथ का (कमाया हुआ) मैल है। पुत्र की रक्षा करना प्रथम कर्त्तव्य है।

'पाति रक्षतीति पिता'

जो पालन पोषण और रक्षण करता है वही पिता है। इसी तरह 'पुनातीतिपुत्रः' जो अपने कर्तव्यों से पिता को पवित्र करे वह पुत्र है। पवित्र करने का मतलब मरने के बाद पिंडदान देकर स्वर्ग पहुंचाना नहीं किन्तु उनकी आत्मा को पवित्र करना है।

राजन् ! मेरे पिता पुत्र के प्रति अपना कर्त्तव्य खूब
समझते थे। इसलिए अपना सब धन दौलत देकर मुझे
वेदना मुक्त करना चाहते थे। किन्तु वस्तुतः न वे मेरे थे और
न मैं उनका था। मेरे मन की मान्यता में ही भूल थी। मैं
जैसा अनाथ था मेरे पिता भी वैसे ही अनाथ थे। अतः मेरी
वेदना न मिटा सके।

अनुयोग द्वार सूत्र में एक दृष्टांत दिया हुआ है
जिसका सार यह है—

पान झरंता देखकर हंसी जो कूंपरिया।
मोय वीती तोय वीतसी धीरी बापरिया॥

पत्ते गिरने लगते हैं और कूंपलें आने लगती हैं। पत्तों
को गिरते देखकर नई कूंपलियां हंसने लगी। और कहने लगी
कि तुम गिरो अब हम मौज करेंगी। यह सुनकर गिरते हुए पत्तों
ने जवाब दिया कि जरा धीरज रखो, एक दिन ऐसा आयेगा
जब तुम्हें भी गिरना पड़ेगा। 'या घर याही रीत है, एक
आवत एक जावत' हम तो अपनी उम्र पूरी करके जा रहे हैं
किन्तु तुम ध्यान रखना कहीं बीच ही में कोई बकरी आकर
तुम्हारा विनाश न करदे। और अकाल में ही अपना जीवन
पूरा न कर दो।

राजन् ! यह संसार का नियम है कि रोग सब किसी को
होते है। किन्तु कोई भी किसी का दुःख छुड़ाने में समर्थ नहीं होता
है। मैं भी अपने पिता को चिन्ता मुक्त करना चाहता था लेकिन

लाचार था। यही अनाथता है। अपनी असमर्थता अनुभव करके मैं ने निश्चय कर लिया कि अनन्तकाल से संसार परिभ्रमण में वेदना सहन कर रहा हूं, अब कोई स्थायी उपाय करूँ कि जिससे कभी वेदना ही न हो।

चरित्र—

सुदर्शन बड़ा ऋद्धिशाली था। किन्तु ऋद्धि की अपेक्षा उसके मन में चारित्र्य की अधिक कीमत थी। इसलिए कपिला के पिण्ड से छूटने पर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। किसी आदमी की कमर में रुपयों की लोली बंधी हो और जंगल में उसको लुटेरों ने घेर लिया हो, यदि दैव योग से वह बचकर निकल जाय तो उसे कितनी खुशी होगी यह अनुभवी ही समझ सकता है। जिसके दिल में शील पालने का महत्व न हो वह सुदर्शन की खुशी को क्या महसूस कर सकता है।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि सुदर्शन ने अपनी रक्षा असत्य का आश्रय लेकर चालाकी से क्यों की, इससे तो चालाकी करना और धोके बाजी करना वाजिब साबित हो जाता है।

इस शंका का समाधान यह है कि पहले सुदर्शन की भावना को समझने की कोशिश करना चाहिये। सुदर्शन की सदा यह भावना रहती थी कि मैं पर स्त्री के लिए नपुंसक हूं। पर स्त्री को देखकर उसके मन में कामविकार उत्पन्न नहीं होता था। यह बात साधारण नहीं है। लम्बे काल से वह पर स्त्री में मातृ कल्पना करता रहा होगा या पर स्त्री को

देखकर अपने को नपुंसकवत् मानना रहा होगा तभी तो स्वस्त्री के सिवा अन्य नारियों में उसे आकर्षण न होता था। उसने सदा यही शिक्षा पाई थी कि स्वस्त्री के सिवा सब के लिए मैं नपुंसक हूं।

इस पर भी आपको शंका हो सकती है कि नपुंसक न होते हुए भी अपने को नपुंसक मानना झूठ है। किन्तु ज्ञान के मार्ग में ऐसी कल्पना की जाती है। जैसे—

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यःपश्यति स पण्डितः॥

पर स्त्री को माता मानना, परद्रव्य को पत्थर मानना और पर प्राणियों को अपनी आत्मा के समान मानना क्या झूठ है? वेश्या को भी माता मानना और सुवर्ण चांदी को पत्थर मानना क्या झूठ नहीं है? जो माता नहीं है उसे माता मानना और सोना चांदी को पत्थर मानना अगर झूठ नहीं है तो परस्त्री के लिए अपने को नपुंसक मानना और कहना झूठ कैसे कहा जा सकता है। यह तो एक प्रकार की भावना है।

वेश्या वेश्या ही है और सोना चांदी सोना चांदी ही हैं। किन्तु उनसे अपना बचाव करने के लिए उन में माता और पत्थर की कल्पना की जाती है। इस कल्पना का उद्देश्य बहुत ऊंचा है अतः यह कल्पना झूठ नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार सुदर्शन परस्त्री से सदा अपना बचाव करना चाहता था और इसीलिए उसके लिए अपने को नपुंसक होने की भावना या कल्पना किया करता था। जब परस्त्री से बचने का प्रसंग आया तब उसने वही बात कह डाली जो सदा मन में रखता था।

वेश्या में माता की कल्पना किये बगैर उसके आकर्षण से बचना बड़ा कठिन है। किसी ने कहा कि अमुक मंत्र जपने से नागिन फूलों की माला बन जाती है। अब बताइये, उस मंत्र के द्वारा नागिन को फूल माला बनाने की कल्पना करना अच्छा है या विषवल्लरी बनाने की कल्पना करना? वेश्या में भी पुरुष में मादकता पैदा करने की शक्ति रही हुई है। अतः उसे फूल माला के समान माता मानने की कल्पना क्यों न की जाय ताकि उसके विष से बचाव हो सके। वेश्या में प्रतिदिन माता की भावना भाते रहने से वह हमारे लिए निर्दोष हो जाती है। माता के लिए सभी नपुंसक हैं। मातृगमन की कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। माता के लिए पुत्र नपुंसक ही है। माता को देखकर वासना जागृत हो ही नहीं सकती।

अतः सुदर्शन ने अपने शील की रक्षा के लिए जो कुछ कहा वह ठीक ही कहा था। उसमें झूठ या दगाबाजी की कल्पना करना सत्य और असत्य के स्वरूप को न समझना है। सुदर्शन का दृष्टान्त देकर झूठ बोलना या कपट करना वाजिब साबित करना सत्य का गला घोटना है। अपने को नपुंसक बताकर सुदर्शन ने अपने आप को भी बचा लिया और कपिला को भी बचा दिया।

लिया नियम पर घर जाने का जहां रहती हो नार।
निजघर रहके धर्म आराधे, शियल शुद्ध आचार ॥धन०॥३०॥

घर आकर सुदर्शन इस बात पर गहराई से विचार करने लगा कि मुझ पर कपिला का मन क्यों खराब हुआ।

मुझे देख कर उसके मन में विषय विकार सेवन करने का खिंचाव क्यों उत्पन्न हुआ? क्या इसमें उसीका दोष है या मेरा भी कुछ दोष है? विचार करते करते सुदर्शन इस निर्णय पर पहुंचा कि इसमें मेरे शरीर के सौन्दर्य का भी दोष है, जिस पर मोहित होकर कपिला का मन बिगड़ा और यहां तक नौबत पहुंच गई। अतः यह बहतर है कि मैं दूसरों के घर पर ही न जाया करूं जिससे कि मेरे शरीर के रूप सौन्दर्य को देख कर किसी का मन विकृत हो। जिस मार्ग पर गमन करने से एक वार मैं खतरे में पड़ चुका हूं उस मार्ग को सदा के लिए छोड़ देता हूं। राजा के यहां या आम सभा को छोड़ कर किसी के घर पर ही न जाऊंगा ऐसा सुदर्शन ने निश्चय कर लिया।

श्रावक के लिए पर घर प्रवेश मना है। साधु आहार पानी लेने के लिए गृहस्थियों के घर जाते हैं किन्तु श्रावक नहीं जाते। अतः श्रावकों की बड़ी प्रतीति और प्रामाणिकता मानी जाती है। उन पर कोई किसी प्रकार का संदेह नहीं करते।

सुदर्शन यह विचार कर रहा था उधर कपिला अपने घर पर विचार करती थी कि देखने में वह सेठ बड़ा हृष्टपुष्ट और सुन्दर मालूम देता था किन्तु निकला नपुंसक। जब वह नपुंसक है तब उसकी स्त्री का क्या हाल होगा। वह जगत् में सती कहलाती है और भीतर में जरूर पर पुरुष गमन करती होगी मैंने पहले राजाके घर के हाल जाने थे अब सेठ के घर

के हालात भी मालूम होगये। मैं समझ गई कि सभी स्त्रियां मेरे समान ही होती हैं। मैं जैसी भीतर बाहर भिन्न भिन्न हूं दूसरी भी वैसी ही हैं। अच्छा हुआ सो सेठ को बुलालाई और उसकी पोल मालूम हो गई। कैसे २ पुरुष होते हैं जो पुरुषत्व हीन होते हुए भी लोगों में अच्छा दिखाने के लिए विवाह कर लेते हैं। और अपनी गणना पुरुषों में करवाते हैं।

बाहर गांव का कार्य पूरा हो जाने से कपिल पुरोहित घर पर आगया। कपिला उसके सामने इस तरह पेश आई जैसे कुछ हुआ ही न हो। उसने मन में सोचा कि सेठ नपुंसक होते हुए भी बात का तो पक्का है। उसने मेरे सामने शपथ खाकर स्वीकार किया था कि मैं यह भेद किसी के सामने प्रकट न करूंगा। यहां तक कि अपने परम मित्र कपिल के सामने भी जिक्र न करूंगा। यदि वह ऐसी प्रतिज्ञा न करता तो मेरा भाग्य ही फूट जाता। मैं कहीं की न रहती। कपिला ने पति के समक्ष कुछ न कहा। चुप्पी साधली। जैसे कोई बात हुई ही न हो।

कपिल ने अपने परम मित्र सुदर्शन से एक दिन पूछा कि आजकल आप मेरे घर पर क्यों नहीं आते? क्या बात हुई जिससे आना छोड़ दिया। सुदर्शन ने जवाब दिया कि मैंने राजा के सिवाय किसी के घर जाना छोड़ दिया है। किसी के भी घर न जाने का व्रत ले लिया है यह पूछे जाने पर कि यह व्रत तो आपको पहले भी था कपिल ने उत्तर दिया कि पहले मैंने मित्र के घर पर जाने की छूट रखी थी। अब वह भी छूट

देकर दी है। केवल [illegible] कि यहां नहीं किन्तु किसी के लिए के यहां नहीं आने का विचार के लिए [illegible] आपको यह ज्ञान का अति प्रसन्न होना [illegible] कि [illegible] मित्र अधिकाधिक व्रत पालन कर रहा है।

मनुष्य को एक बार ठोकर खाकर सावधान हो जाना चाहिए। जो ठोकर खाकर भी सावधान नहीं होता वह मूर्ख गिना जाता है। ठोकर खाकर फिर सावधान होना तथा पहले से सावधान रहना। [illegible] मैं एक दृष्टान्त से बताता हूँ सो ध्यान पूर्वक सुनें

एक अध्यापक गुरु ने यह निश्चय कर लिया कि पहले छात्र की परीक्षा करूँगा और जो मेरी परीक्षा में उत्तीर्ण हो उसी को पढ़ाना अन्य को न पढ़ाना। उसने एक अंधेरे कमरे में घण्टा बांध दिया। कमरा मकान के ठीक बीचोंबीच बांधा था। एक दिन तीन छात्र पढ़ने की उम्मीद से गुरु जी के पास आये गुरु जी ने कहा— बैठो। एक छात्र से कहा—जाओ उस कमरे में पुस्तक रखी है, उठा लाओ। छात्र कमरे के पास गया तो उसे ज्ञात हुआ कि कमरे में बहुत अंधेरा है। वह एक हाथ आगे रखकर सावधानी से चलने लगा। चलते चलते उसके हाथ में घण्टेकी लगी। वह इधर उधर से आगे बढ़ गया और सामने रखी पुस्तक उठा लाया। लाकर गुरु जी को दे दी।

गुरुजी ने दूसरे छात्र से कहा--तुम भी जाओ और एक पुस्तक उठा लाओ। दूसरा छात्र एकदम कमरे में चला गया। ज्योंहि बीच में पहुंचा कि घण्टे से सिर टकरा गया

और कुछ चोट लगी। वह पुस्तक उठाकर लौटते वक्त बड़ी सावधानी से घण्टे से अपना बचाव करता हुआ बाहर निकल आया और पुस्तक लाकर गुरूजी की सेवा में पेश कर दी।

गुरूजी ने तीसरे छात्र को भी यही आज्ञा दी कि कमरे में जाकर एक पुस्तक उठा लाओ। वह तुरत हड़बड़ाता हुआ कमरे में गया। बीच में जाकर घण्टे से सिर टकरा गया जिससे सिर दबाने लगा और पुस्तक लेकर वापस लौटा। किन्तु लौटते वक्त पुनः सिर टकरा गया जिससे बड़ा नाराज होता हुआ बाहर आया और गुरूजी के हाथ में पुस्तक देकर कहने लगा कि वह आदमी कैसा मुर्ख है जिसने कमरे के बीचोंबीच घण्टा बांधा है।

गुरूजी ने दूसरे दोनों छात्रों से भी पूछा कि तुम पर क्या बीती सो सुनाओ। पहले छात्र ने कहा--गुरूजी! मैं तो अंधेरा देखकर द्वार पर से ही सावधान हो गया और सामने हाथ रखकर चला जिससे घंटा मेरे हाथ में टकराया और बाजू से निकल गया। वह घण्टा किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने लोगों को सावधान बने रहने की कला सीखाने के लिए बांध रखा हो ऐसा मालूम पड़ता है। मैं तो पहले ही सावधान था। मेरे लिए उसका होना न होना समान है।

दूसरे छात्र ने कहा—गुरूजी! जाते वक्त मैं असावधान था। मैं कुछ भी ख्याल किए बिना एकदम कमरे में चला गया जिससे सिर में चोट लगी। किन्तु लौटने वक्त सावधान हो

गया और सुरक्षित बाहर निकल आया। एक बार असावधानी का फल भुगतकर दूसरी वक्त में सावधान हो गया।

तीनों छात्रों की जबानी सुनकर गुरूजी ने निर्णय दिया कि पहला छात्र मेरी सम्पूर्ण विद्या का अधिकारी है। वह बड़ा सावधान और पूर्ण योग्य पात्र है। दूसरा छात्र मेरी आधी विद्या का अधिकारी है। उसे भी मैं पढाऊंगा क्योंकि एक बार गलती करके भी दूसरी बार उसने उसे सुधार लिया है। किन्तु तीसरा छात्र विद्या का सर्वथा अनधिकारी है। एक बार सिर में लगने पर भी उसने शिक्षा ग्रहण न की और उसी असावधानी से पुनः लौटा और फिर सिर टकराया तो घण्टा बांधने वाले को दोष देने लगा। दुनिया में ऐसे कई घण्टे बंधे हुए हैं। यदि असावधानी रखी जायगी तो पग पग पर चोट लगेगी। दूसरों को दोष देने से क्या काम चलेगा। अतः तीसरे छात्र को मैं न पढाउंगा। वह मुझसे कोई बात ग्रहण न कर सकेगा।

इस दृष्टांत के अनुसार यह संसार भी एक पाठशाला है। और आप इसके विद्यार्थी हैं। जो विना ठोकर खाये साव-धानी पूर्वक अपना व्यवहार चलाता है वह प्रथम नंबर का योग्य व्यक्ति है। यदि आप प्रथम नम्बर न पा सको तो कम से कम एक बार ठोकर खाकर तो चेतो। संसार के कुटुम्ब परिवार और मित्र अमित्र सब ठोकर के समान हैं। इनसे एक बार टकराकर आयन्दा के लिए शिक्षा ग्रहण करो। यदि आप विवेक और सावधानी पूर्वक अपना लोक व्यवहार

और कुछ चोट लगी। वह पुस्तक उठाकर लौटते वक्त बड़ी सावधानी से घण्टे से अपना बचाव करता हुआ बाहर निकल आया और पुस्तक लाकर गुरूजी की सेवा में पेश कर दी।

गुरूजी ने तीसरे छात्र को भी यही आज्ञा दी कि कमरे में जाकर एक पुस्तक उठा लाओ। वह तुरत हड़बड़ाता हुआ कमरे में गया। बीच में जाकर घण्टे से सिर टकरा गया जिससे सिर दबाने लगा और पुस्तक लेकर वापस लौटा। किन्तु लौटते वक्त पुनः सिर टकरा गया जिससे बड़ा नाराज होता हुआ बाहर आया और गुरूजी के हाथ में पुस्तक देकर कहने लगा कि वह आदमी कैसा मुर्ख है जिसने कमरे के बीचोंबीच घण्टा बांधा है।

गुरूजी ने दूसरे दोनों छात्रों से भी पूछा कि तुम पर क्या बीती सो सुनाओ। पहले छात्र ने कहा--गुरूजी! मैं तो अंधेरा देखकर द्वार पर से ही सावधान हो गया और सामने हाथ रखकर चला जिससे घंटा मेरे हाथ में टकराया और बाजू से निकल गया। वह घण्टा किसी बुद्धिमान् व्यक्ति ने लोगों को सावधान बने रहने की कला सीखाने के लिए बांध रखा हो ऐसा मालूम पड़ता है। मैं तो पहले ही सावधान था। मेरे लिए उसका होना न होना समान है।

दूसरे छात्र ने कहा—गुरूजी! जाते वक्त मैं असावधान था। मैं कुछ भी ख्याल किए बिना एकदम कमरे में चला गया जिससे सिर में चोट लगी। किन्तु लौटने वक्त सावधान हो

गया और सुरक्षित बाहर निकल आया। एक बार असावधानी का फल भुगतकर दूसरी वक्त में सावधान हो गया।

तीनों छात्रों की जबानी सुनकर गुरुजी ने निर्णय दिया कि पहला छात्र मेरी सम्पूर्ण विद्या का अधिकारी है। वह बड़ा सावधान और पूर्ण योग्य पात्र है। दूसरा छात्र मेरी आधी विद्या का अधिकारी है। उसे भी मैं पढ़ाऊंगा क्योंकि एक बार गलती करके भी दूसरी बार उसने उसे सुधार लिया है। किन्तु तीसरा छात्र विद्या का सर्वथा अनधिकारी है। एक बार सिर में लगने पर भी उसने शिक्षा ग्रहण न की और उसी असावधानी से पुनः लौटा और फिर सिर टकराया तो घण्टा बांधने वाले को दोष देने लगा। दुनिया में ऐसे कई घण्टे बंधे हुए हैं। यदि असावधानी रखी जायगी तो पग पग पर चोट लगेगी। दूसरों को दोष देने से क्या काम चलेगा। अतः तीसरे छात्र को मैं न पढाउंगा। वह मुझसे कोई बात ग्रहण न कर सकेगा।

इस दृष्टांत के अनुसार यह संसार भी एक पाठशाला है। और आप इसके विद्यार्थी हैं। जो बिना ठोकर खाये साव-धानी पूर्वक अपना व्यवहार चलाता है वह प्रथम नंबर का योग्य व्यक्ति है। यदि आप प्रथम नम्बर न पा सको तो कम से कम एक बार ठोकर खाकर तो चेतो। संसार के कुटुम्ब परिवार और मित्र अमित्र सब ठोकर के समान हैं। इनसे एक बार टकराकर आयन्दा के लिए शिक्षा ग्रहण करो। यदि आप विवेक और सावधानी पूर्वक अपना लोक व्यवहार

चलाओगे तो इस संसार को अपने लिए स्वर्ग बना सक
हो। और यदि अविवेक और असावधानी से वर्ताव या का
करोगे तो पद पद पर कष्ट उठाने पड़ेंगे और यह संसार आप
लिए नरक बन जायगा। संसार को स्वर्ग या नरक बना
आप ही पर निर्भर है। स्वर्ग और नरक और कुछ नहीं
आपकी आत्मा ही स्वर्ग नरक है। अतः आत्मा को सावधा
रखना चाहिये।

जो सदा सावधान रहते हैं और कभी ठोकर खाते ह
नहीं वे परमात्मा के समान हैं। जो ठोकर खाते हैं वे भी द
प्रकार के हैं। एक अन्तरात्मा दूसरा वहिरात्मा। जो एक बा
ठोकर खाकर सावधान हो जाते हैं और पुनः ठोकर नहीं खा
वे अन्तरात्मा हैं। और जो वार बार ठोकरें खाते हैं किन्
संसार में पड़े रहते हैं और चेतते नहीं वे वहिरात्मा हैं। आ
लोग अनेक बार नरक तिर्यञ्च के कष्ट सहन कर चुके हैं
गर्भ में भी बड़ा कष्ट सहा है; किन्तु अभी तक चेतते नहीं हैं
यह जानकर बड़ा आश्चर्य होता है।

दुनिया किधर जा रही है देखकर दिल में दुःख होता
है। लोगों ने मान रखा है कि 'दुनिया ठगनी मक्कर से, रोटी
खानी शक्कर से'। देखिये, पानवालों की दुकानों पर कांच
क्यों लगा रखे हैं? होटलों में अनेक प्रकार के चित्र क्यों
लगाये गये हैं और क्यों विविध प्रकार के वाद्य बजाये जाते
हैं? सीनेमाघरों में सजावट क्यों है? यह सब दुनिया को
ठगने के लिए ही तो है। भोले और अज्ञानी जीव इनमें फंस

कर धन और स्वास्थ्य का नाश करते हैं और साथ में चरित्र से भी भ्रष्ट हो जाते हैं।

हिन्दुओं की चोटी जो सिर पर रहा करती थी अब आगे आ गई है। बाल रखवाकर कैसी पट्टी निकाली जाती है। और पोशाक कैसी पहनी जाती है। कितने चमकीले भड़-कीले वस्त्र और फिर बारीक भी। एकदम लोग फैशन में बहे जा रहे हैं। कहलाते हिन्दुस्तानी हैं मगर भावनाएं विलायती बनती जा रही हैं। आप लोगों को अपने देश की भाषा, संस्कृति और वेषभूषा पसन्द नहीं आती है। अपनी संस्कृति की रक्षा की तरफ आपका ध्यान नहीं है।

भारत का वाइसराय भारत का सबसे बड़ा हाकिम है। उसे आप भारतीय पोशाक पहनने की बात कहिये। वाइसराय को छोड़िये, किसी साधारण अंग्रेज से कहिये कि हमारी पोशाक पहनो। तो क्या अंग्रेज आपकी पोशाक पहनेंगे? वे अपनी संस्कृति और वेष भूषा छोड़ने के लिए कभी तय्यार नहीं हैं। किन्तु हिन्दुस्तानियों का कितना मानसिक पतन हो चुका है कि वे बिना सोचे अंधानुकरण करने में लज्जित नहीं होते। अंग्रज आपको यही जवाब देंगे कि हम दस हजार माईल से यहां आये हैं सो अपनी संस्कृति छोड़ने के लिए नहीं आये हैं, उसकी वृद्धि करने वास्ते आये हैं। तुम पर शासन करके धाक जमाने के लिए आये हैं। हम मूंछे न रख-वायेंगे, हां तुम्हारी मूंछे जरूर कटवादेंगे।

आजकल लोग मुख सफाचट रखवाते हैं। और कोई कोई इतने बाल रखवाते हैं, मानों दो मक्खियां बैठी हों। अंग्रेज अपनी संस्कृति नहीं छोड़ते तो आप क्यों अपनी अच्छी सस्कृति को तिलाञ्जली देकर उसके स्थान में बुरी बातें भरते हैं। पाश्चात्य शिक्षा के प्रवाह में वह मत जाओ। यह शिक्षा भारतीय संस्कृति का नाश कर रही है।

जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन
जैसा पीवे पानी वैसी होवे वाणी

के अनुसार जसी शिक्षा होगी भावना भी वैसे ही बनेगी। अतः पाश्चात्य शिक्षा को ही बदलना जरूरी है। यह शिक्षा बनावटी पन सीखाती है। ऊपर से केवल वेशभूषा से भपका दिखाकर लोगों के दिलों पर अपनी धाक जमाना चाहती है। किन्तु भारतीय शिक्ष आर संस्कृति गुण प्रधान है। गुणों पर विशेष ध्यान दिया गया है वेषभूषा पर नहीं।

यह भारतदेश पुण्यभूमि है। इस देश की समता कोई देश नहीं कर सकता। इस देश से ही संसार के सब देशों ने सभ्यता और मानवीय गुण सीखे हैं। किन्तु कुछ काल से पासा बदला हुआ है। उल्टी गंगा बहने लगी है। मुसलमान बादशाहों ने भी भारतीय संस्कृति को अपनाया था। कुछ बादशाहों को अलबत पागलपन सूझा था जिससे उन्होंने जोर जुल्म के द्वारा अपनी संस्कृति और धर्म लोगों पर लादने की कोशिश की थी। किन्तु उसके अत्याचारों से भी लोगों में

वीरता ही आई थी। बादशाहों के जुल्मों से कई लोगों ने उत्कृष्ट दर्जे की वीरता सीखी थी और अपनी संस्कृति पर दृढ़ रहे थे। कम से कम लोग उनके जुल्मों से सावधान तो हो जाते थे किन्तु अंग्रेजों द्वारा दी जाती हुई आधुनिक शिक्षा रूपी नशे से लोग इतने बेभान हो रहे हैं कि हँसते हँसते अपनी सभ्यता और चरित्र का विनाश कर रहे हैं। यह अफीम का नशा है जिसमें मनुष्य चक्कर खाने लगते हैं। यह मीठा विष पिलाया जा रहा है। मुसलमान बादशाहों के समान खुला अत्याचार नहीं है। किन्तु भीतर भीतर में हमारी सभ्यता पर घुण लगा दिया गया है।

मित्रों! विचारक और भारत के हितचिंतक लोग आपका ध्यान इस तरफ आकर्षित करते हैं अतः उस पर ध्यान देना आपका कर्त्तव्य है। ऊपरी टीपटाप में क्या रखा है। मनुष्य में गुण होंगे तो अपने आप उसकी कीर्ति होगी। गुणप्रधान सभ्यता टिकाऊ होती है और वास्तविक भी। सुदर्शन में सच्चरित्रता का गुण था इसी लिए हम लोग उनका चरित्र सुना रहे हैं और आप सुन रहे हैं। अब तो आप लोग चेतो। ठोकर खाकर भी न चेतेंगे तो तीसरे विद्यार्थी जैसी हालत होगी।

इसी भूमि में भगवान् पार्श्वनाथ ने जन्म लेकर भारत का उद्धार किया था। उनकी शिक्षाओं पर ध्यान देंगे तो आपका कल्याण है।

११—८—३६

राजकोट

९

संतान पर माता-पिता का ऋण

धन धन जनक 'सिद्धारथ' राजा, धन 'त्रिसला' दे मात रे प्राणी;
ज्यां सुत जायो ने गोद खिलायो, वर्धमान विख्यात रे प्राणी।
श्री महावीर नमो वरनाणी ॥१॥

प्रार्थना—

यह भगवान् महावीर स्वामी की स्तुति की गई है। परमात्मा की स्तुति करते हुए आत्मा को मुख्यतः किन तत्त्वों का विचार करना चाहिए इस विषय पर कई बार चर्चा की जा चुकी है। किन्तु आज भी कुछ इस विषय में कहना चाहता हूं।

परमात्मा की प्रार्थना करते वक्त मुख्यतः आत्मतत्त्व पर विचार करना चाहिए। संसार में द्रव्य और पर्याय दोनों देखी जाती हैं। पर्याय का मूलभूत आधार द्रव्य है। द्रव्य न हो तो पर्याय किसकी बने? सोने के दागिने सब कोई देखते हैं किन्तु सोना न हो तो दागिने कहां से बने। सोना द्रव्य है और दागिने उसकी पर्याय हैं। किन्तु आजकल लोग द्रव्य को तो भूल गये हैं केवल पर्यायों को पकड़ रक्खा है। यह लोगों

की गंभीर भूल है। केवल पर्यायों को न पकड़े रहो पर द्रव्य को भी देखो। द्रव्य और पर्याय कथञ्चित् भिन्नाभिन्न हैं।

आत्मतत्त्व मूलभूत द्रव्य है तिर्यञ्चादि उसकी पर्यायें हैं। आजकल विज्ञान की बड़ी तरक्की है। हर बात विज्ञान की दृष्टि से देखी जाती है। द्रव्य पर्याय का स्वरूप जैनागमों में है। अतः विज्ञानवेत्ता उसे कैसे समझ सकते हैं जब तक कि वे जैनागमों का अध्ययन न करें, तात्विक अध्ययन किये बिना आत्मस्वरूप का बोध संभव नहीं है। पर्यायों के फेर में पड़कर मूलभूत आत्मतत्त्व को मत भूलो।

ज्यों कञ्चन तिहूकाल कहीजे भूषण नाम अनेक रे
त्यों जगजीव चराचर योनि, है चेतन गुण एक रे प्राणी ॥

जिस प्रकार सोना एक है किन्तु उसके जेवर अनेक प्रकार के होते हैं, उसी प्रकार चेतन तत्त्व एक ही प्रकार का है किन्तु उसकी पर्यायें-चराचर योनियां अनेक प्रकार की है। चैतन्य गुण की तरफ देखिये, अनेक प्रकार के शरीरों में मत फंसिये।

अपनो आप विषय थिर आतम सोई हंस कहाय रे प्राणी।

यह विचार करिये कि पर्याय का ध्यान करते करते अनन्त काल व्यतीत हो गया है अतः अब द्रव्य पर ध्यान लगाइये। यदि कोई सराफ सोने पर ध्यान न दे और केवल घाट पर ही ध्यान देकर कीमत चुकाया करे तो उसका दिवा-लाही निकल जाय। अमुक जेवर पैरों में पहनने का है इस

लिए उसकी कीमत कम है और अमुक जेवर सिर पर पहनने का है अतः उसकी कीमत अधिक है यह खयाल करके यदि सराफ सोना लिया करे तो कब तक उसकी दूकान चल सकती है ? सराफ को केवल सोने की तरफ ही ध्यान रखना पड़ता है डिजायन की तरफ नहीं। डिजायन तो बनते बिगड़ते रहते हैं उनमें असली वस्तु सुवर्ण है।

इसी प्रकार मनुष्य, स्त्री, बालक, वृद्ध और युवा तथा गाय भैंस घोड़ा कुत्ता आदि की तरफ न देखकर उनमें रहने वाले आत्मा को देखिये। विविध प्रकार के घाट तो बनते बिगड़ते रहते हैं किन्तु इनमें रहने वाला शुद्ध आत्मा सदा कायम रहता है। आत्मा मूलतत्त्व है। अनेक प्रकार की खोलियां उसकी वैभाविक पर्यायें हैं।

द्रव्यरूप जीवात्मा को देखने से विषय स्थिर हो जायंगे। और फिर आत्मा सोहं हंस कहा जायगा। जिसे

त्मा की प्रार्थना करने से आत्मा निज रूप को पहचान सकता है और तदाकार हो सकता है। जो इस प्रकार प्रार्थना करेंगे उनका सदा भला है।

शास्त्र—

द्रव्य को किस प्रकार भुलाया जा रहा है और पर्याय को किस प्रकार पकड़ा जा रहा है, यह बात शास्त्र से कहता हूं। अभी तो उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन के द्वारा समझाता हूं।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को बता रहे हैं कि राजन्! जो व्यक्ति द्रव्यदृष्टि को गौण बनाकर पर्याय दृष्टि को मुख्य बना लेता है वह अनाथ है। और जो पर्याय दृष्टि को गौण करके द्रव्यदृष्टि को मुख्य बना लेता है वह सनाथ है। अर्थात् जो शरीर रूप पर्याय पर अधिक २ ध्यान लगाता है और आत्मा रूप द्रव्य का खयाल ही नहीं करता वह अनाथ नहीं तो और क्या होगा। वह अपने शरीर का गुलाम होगा।

कथानकों में ऐसा भी सुना जाता है कि अनाथी मुनि का पिता इब्भ सेठ था। इब्भ सेठ तीन प्रकार के होते हैं— उत्तम मध्यम और कनिष्ट। जिसके पास खड़े हुए एक हाथीको रुपयों से ढांक देने जितना धन हो वह कनिष्ट इब्भ कहा जाता है। जिसके पास मोहरों से हाथी को ढांक देने जितना धन हो वह मध्यम इब्भ सेठ है। और जिसके पास रत्नों से हाथी को ढांकने जितना धन हो वह उत्तम इब्भ सेठ कहा जाता

लिए उसकी कीमत कम है और अमुक जेवर सिर पर पहनने का है अतः उसकी कीमत अधिक है यह खयाल करके यदि सराफ सोना लिया करे तो कब तक उसकी दूकान चल सकती है? सराफ को केवल सोने की तरफ ही ध्यान रखना पड़ता है डिजायन की तरफ नहीं। डिजायन तो बनते बिगड़ते रहते हैं उनमें असली वस्तु सुवर्ण है।

इसी प्रकार मनुष्य, स्त्री, बालक, वृद्ध और युवा तथा गाय भैंस घोड़ा कुत्ता आदि की तरफ न देखकर उनमें रहने वाले आत्मा को देखिये। विविध प्रकार के घाट तो बनते बिगड़ते रहते हैं किन्तु इनमें रहने वाला शुद्ध आत्मा सदा कायम रहता है। आत्मा मूलतत्त्व है। अनेक प्रकार की खोलियां उसकी वैभाविक पर्यायें हैं।

द्रव्यरूप जीवात्मा को देखने से विषय स्थिर हो जायंगे। और फिर आत्मा सोहं हंस कहा जायगा। जिसे योगी लोग अनलहक भी कहते हैं। सोहं का अर्थ यह है कि जैसा तू है वैसा ही मैं हूं और हंस का अर्थ यह है कि जैसा मैं हूं वैसा ही तू है। यानी मैं वही हूं। परमात्मा हूं शुद्ध स्वरूप हूं। अनलहक का अर्थ है मैं खुदा हूं। जो आत्मा की मूलसत्ता पर विचार करता है वह किसी से द्वेष और किसी पर राग कैसे कर सकता है। तत्वज्ञान का विचार करना ज्ञानमार्ग है। द्रव्य और पर्याय का वास्तविक बोध करने के लिए ही प्रार्थना की जाती है। पर्याय दो प्रकार की होती हैं स्वाभाविक और वैभाविक। वैभाविक पर्याय कर्मकृत है और हेय है। परमा-

त्मा की प्रार्थना करने से आत्मा निज रूप को पहचान सकता है और तदाकार हो सकता है। जो इस प्रकार प्रार्थना करेंगे उनका सदा भला है।

शास्त्र—

द्रव्य को किस प्रकार भुलाया जा रहा है और पर्याय को किस प्रकार पकड़ा जा रहा है, यह बात शास्त्र से कहता हूं। अभी तो उत्तराध्ययन के बीसवें अध्ययन के द्वारा समझाता हूं।

अनाथी मुनि राजा श्रेणिक को बता रहे हैं कि राजन्! जो व्यक्ति द्रव्यदृष्टि को गौण बनाकर पर्याय दृष्टि को मुख्य बना लेता है वह अनाथ है। और जो पर्याय दृष्टि को गौण करके द्रव्यदृष्टि को मुख्य बना लेता है वह सनाथ है। अर्थात् जो शरीर रूप पर्याय पर अधिक २ ध्यान लगाता है और आत्मा रूप द्रव्य का खयाल ही नहीं करता वह अनाथ नहीं तो और क्या होगा। वह अपने शरीर का गुलाम होगा।

कथानकों में ऐसा भी सुना जाता है कि अनाथी मुनि का पिता इभ्भ सेठ था। इभ्भ सेठ तीन प्रकार के होते हैं— उत्तम मध्यम और कनिष्ठ। जिसके पास खड़े हुए एक हाथीको रुपयों से ढांक देने जितना धन हो वह कनिष्ठ इभ्भ कहा जाता है। जिसके पास मोहरों से हाथी को ढांक देने जितना धन हो वह मध्यम इभ्भ सेठ है। और जिसके पास रत्नों से हाथी को ढांकने जितना धन हो वह उत्तम इभ्भ सेठ कहा जाता

है। अनाथी मुनि के पिता के पास सत्तावन इब्भ धन था यह सब धन वह अपने पुत्र को पीड़ा मुक्त कर देनेवाले को देने के लिए तय्यार था। किन्तु फिर भी रोग मुक्त करने में समर्थ न हुआ।

राजन्! तू अपने को सम्पत्ति के कारण नाथ मानता है किन्तु मेरे पिता के पास सम्पत्ति की कमी न थी फिर भी मैं अनाथ था तो तू सम्पत्ति के कारण नाथ कैसे कहा जा सकता है। जब तू अपना ही नाथ नहीं है तो दूसरों का नाथ कैसे बन सकता है।

माया यमे महाराय! पुत्तसोग दुहट्ठिया।
न य दुक्खाउ विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया ॥२५॥

राजन्! मेरे माता भी थी। वैसे तो माता सब के होती है। मगर कइयों की माता जब वे गर्भ में होते हैं तभी मर जाती है। और मां का पेट चीर कर उनको बाहर निकाला जाता है। वे मातृस्नेह से सर्वथा वंचित होते हैं। उनके लिए माता का होना क्या काम आया। लेकिन मेरी माता मौजूद थी और मुझ से बहुत स्नेह भी करती थी। मैंने दीक्षा अंगीकार की तब तक मेरी माता मौजूद थी। मेरी मा ने मेरा बड़े प्रेम से लालन पालन किया था। मेरा विवाह भी बड़े हर्ष से किया। किन्तु जब मुझे रोग हो गया तब वह बड़ी दुःखी हुई। वह रात दिन मुझे रोग मुक्त करने के लिए बड़ी चिन्तित रहती थी। लेकिन मेरा दुःख न मिटा सकी यही मेरी अना-

थता है।

कई कई माताएं ऐसी भी होती हैं जो अपने ऐशोआराम के लिए पुत्र की पर्वाह नहीं करतीं। अपने दुराचार के लिए पुत्र को मार कर या जिन्दा तक गाड़ देने की बातें सुनी गई हैं।

शास्त्र में कथा है कि ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की माता ने जब गर्भ में था चौदह स्वप्न देखे थे। स्वप्नों के कारण वह जान गई थी कि उसका पुत्र चक्रवर्ती होगा। फिर भी दीर्घ-राजा के साथ भ्रष्ट हो जाने से उसने अपने पुत्र ब्रह्मदत्त को मार डालने का विचार व प्रयत्न तक किया था। उसने सोचा पुत्र बड़ा हो गया है अतः मेरी कामवासना की पूर्ति में बाधक होगा। इसलिए उसने एक लाक्षा गृह बनवाया। उसमें ब्रह्मदत्त को सुला दिया और रात के समय स्वयं ही उसमें जाकर आग लगा दी। यह तो ब्रह्मदत्त के पूर्वकृत पुण्य का फल था कि प्रधान की होशियारी से वह बचा लिया गया। किन्तु उसकी माता ने तो उसे मार डालने में कोई कसर न रखी थी।

राजन्! सब माताएँ एक समान नहीं होतीं। कई माताएं अपने पुत्र की रक्षा के लिए प्राण तक दे देती हैं। मेरी माता भी इसी प्रकार की थी कि वह मुझ को कहती थी कि अगर तेरे प्राणों की रक्षा के लिए मुझे अपने प्राण तक देने पड़ें तो मैं देने को तैयार हूं। पुत्र! यदि कोई सामने

आकर मेरे शरीर में भाला खोंचता तो मैं बीच पड़कर भाला अपने शरीर पर झेल लेती और तुझे बचा देती। किन्तु तेरी यह पीड़ा भीतरी है। इसको मैं किस प्रकार मिटाऊं? तेरी पीड़ा देखकर मैं दुःखी हूं। मगर उसे दूर करने में कतई लाचार हूं। राजन्! यही मेरी अनाथता है।

अनाथी मुनि के कथन का कोई यह अर्थ न लगा ले कि जब माता पिता हमारा दुःख दर्द दूर नहीं कर सकते तो उनको मानने और सेवा शुश्रूषा करने की क्या जरूरत है। और न यह अर्थ लगाना चाहिए कि जब कोई किसी का दुःख दर्द मिटा ही नहीं सकता तो उसकी सेवा शुश्रूषा या रोग मिटाने का उपाय करना एकान्त पाप का कारण है।

थलीमारवाड़ में एक सम्प्रदाय ऐसा भी है जो माता पिता के लिए पुत्र को और पुत्र के लिए माता पिता को कुपात्र बताता है। माता पिता द्वारा पुत्र का पालन पोषण और संरक्षण करना तथा पुत्र द्वारा माता पिता की सेवा शुश्रूषा करना वह सम्प्रदाय सर्वथा पाप मानता व बताता है। अपनी इस मान्यता की पुष्टि में अन्य दाखलों के सिवा वह अनाथी मुनि का भी दाखला पेश करता है। वह कहता है कि देखो अनाथी मुनि का दुःख व रोग कोई नहीं मिटा सके अतः रोगी की सेवा करना एकान्त पापकर्म के बंध का कारण है। लेकिन यह कथन किस प्रकार अनुचित और शास्त्र विरुद्ध है यह बात एक दाखला देकर कहता हूं जिससे आपकी समझ में शीघ्र आ सके।

एक माता अपने पुत्र से कहती है कि पुत्र ! अब तू पढ़ लिखकर होशियार हो गया है। मैं तो आशा लगाये बैठी थी कि तू बड़ा होकर मेरी सेवा करेगा। किन्तु तू तो सेवा के बजाय मुझे कष्ट देता है। मेरा तुझ पर कितना उपकार है। इस बात को तू बिलकुल भूल गया है।

पुत्र अपनी माता को जवाब देता है कि बस मां ! रहने दे। तू अपने अज्ञान के कारण ऐसा कहती है कि मुझ पर तेरा उपकार है। बल्कि मेरा तुझ पर उपकार है। जब मेरा जन्म न हुआ था तब तू संतान के लिए कितना विलाप करती और दुःखी होती थी। जब मैं पेट में आया तब तेरा वांझपने का दोष मिटा और तेरी इज्जत बढी। तुझे बड़ी प्रसन्नता हुई और सुखी हुई। तुम पति-पत्नी मौज करने में लगे हुए थे कि मैं पेट में आगया। जब मेरा जन्म हुआ तब भी तुमने बड़ा उत्सव मनाया और आनन्दानुभव किया। जब कुछ बड़ा हुआ तब मुझसे लाड़ प्यार करके मुझे खेलाकर और मेरा चुंबन लेकर तुमने बहुत आनन्द उठाया है। जब शादी के लायक हो गया तब मेरी शादी करके सगे सम्बन्धियों और गाम में बड़ा लाव्हा लिया था। अगर मैं न होता तो तुझे इतना सुख कहां से प्राप्त होता ? अब तू ही बता मां कि मेरा तुझपर उपकार है या तेरा मुझपर ? इसलिए मां अब तू बड़बड़ाना छोड़ दे और जैसा मैं कहूं किया कर।

पुत्र का उत्तर सुनकर माताने कहा बेटा ! मैंने तुझे अपना दूध पिलाकर बड़ा किया है। ऐसा क्या बोलता है।

इस पर पुत्र ने कहा–मां इसमें भी उपकार की क्या बात हुई। अगर मुझे दूध न पिलाती तो तेरे स्तन फट जाते और तू बड़ी दुःखी होती। अपना दर्द मिटाने के लिए ही तैने मुझे दूध पिलाया था। दूसरी बात वह दूध तो मेरा ही था। मेरे हक का था। जब मैं जन्मा तभी तेरे स्तनों में दूध आया था। मेरे जन्म के पहले तेरे स्तनों में दूध कहां था? इतने पर भी यदि तू तकरार करती है तो जितना दूध पिया है उसका पैसा ले ले।

पुनः मां ने कहा–बेटा! मैंने तेरे को नव मास पेट में रखा है। तू दूध के पैसे देने की बात कहता है किन्तु पेट में रखा इसका तो उपकार मान।

पुत्र ने कहा–इसमें उपकार की क्या बात है। पेट में तूने क्या रखा, मैंने स्वयं अपना स्थान बना लिया था। फिर भी चाहे तो पेट में रहने का किराया ले ले। कलकत्तादि में कोटड़ियों का किराया लिया जाता है वैसे तू भी ले ले। इससे अधिक क्या चाहती है।

मां सीधी सादी और कम पढ़ीलिखी थी। अधिक तर्क वितर्क करना न जानती थी। उसने कहा बेटा! हम लोग आपस में क्यों जिद्द करें। अपने गुरुजी के पास चले चलें। अगर वे कह देंगे कि शास्त्रानुसार पुत्र का माता पिता पर उपकार है तो मैं तेरे जुल्म सहन करती रहूंगी और तेरी सेवा करती रहूंगी। और यदि वे कह देंगे कि पुत्र पर माता पिता का उपकार है तो तुझे मेरी सेवा करनी पड़ेगी।

लड़के ने सोचा कि यह बात ठीक है। क्योंकि शास्त्र में तो मैंने सुना है कि कोई किसी का दुःख दर्द मिटा नहीं सकता। जब कोई किसी का दुःख दर्द मिटा नहीं सकता तो सेवा करना धर्म कसे होगा इसमें गुरुजी क्या बतलायेंगे। चल मां गुरुजी के पास चल।

बन्धुओ! उस समय यदि वह किसी ऐसे गुरु के पास पहुंच जाती जो माता पिता की सेवा करने में एकान्त पाप होने की प्ररूपणा करते हैं और माता पिता को कुपात्र बताते हैं, तो उस बेचारी पर संकट का पहाड़ आ पड़ता और उसका लड़का उसपर हावी हो जाता। किन्तु सौभाग्य से वह ऐसे गुरु के पास पहूंची जो भगवान महावीर के प्ररूपित शास्त्र के जानकार थे। जिन महावीर ने अपनी हलनचलन से माता को तकलीफ न हो इस भावना से गर्भावस्था में हलनचलन बन्द कर दी थी फिर माता को विकल जानकर पुनः हलचल चालू की थी। माता ने गुरुजी से पूछा कि महाराज! अभी तक मैं सुनती आई हूं कि पुत्र पर माता पिता का अनन्त उपकार है। किन्तु मेरा बेटा कहता है कि पुत्र का माता पिता पर उपकार है। आप कृपया शास्त्र देखकर सच्ची बात बताइये।

पुत्र ने गुरुजी से कहा--महाराज! आप सोच समझकर निर्णय दें। उत्तराध्ययन सूत्र के बीसवें अध्ययन में अनाथी मुनि के अधिकार में स्पष्ट बताया हुआ है कि माता पिता स्त्री आदि कोई भी सम्बन्धी अनाथी मुनि की वेदना मिटाने में

इस पर पुत्र ने कहा–मां इसमें भी उपकार क
बात हुई। अगर मुझे दूध न पिलाती तो तेरे स्तन फ
और तू बड़ी दुःखी होती। अपना दर्द मिटाने के लिए
मुझे दूध पिलाया था। दूसरी बात वह दूध तो मेरा ह
मेरे हक का था। जब मैं जन्मा तभी तेरे स्तनों में दूध
था। मेरे जन्म के पहले तेरे स्तनों में दूध कहां था? इ
भी यदि तू तकरार करती है तो जितना दूध पिया है
पैसा ले ले।

पुनः मां ने कहा–बेटा! मैंने तेरे को नव मास
रखा है। तू दूध के पैसे देने की बात कहता है किन्तु
रखा इसका तो उपकार मान।

पुत्र ने कहा–इसमें उपकार की क्या बात है। पे
तूने क्या रखा, मैंने स्वयं अपना स्थान बना लिया था।
भी चाहे तो पेट में रहने का किराया ले ले। कलकत्ता
कोटड़ियों का किराया लिया जाता है वैसे तू भी ले
इससे अधिक क्या चाहती है।

मां सीधी सादी और कम पढ़ीलिखी थी। अधिक
वितर्क करना न जानती थी। उसने कहा बेटा! हम
आपस में क्यों जिद्द करें। अपने गुरुजी के पास चले च
अगर वे कह देंगे कि शास्त्रानुसार पुत्र का माता पिता
उपकार है तो मैं तेरे जुल्म सहन करती रहूंगी और तेरी
करती रहूंगी। और यदि वे कह देंगे कि पुत्र पर माता
का उपकार है तो तुझे मेरी सेवा करनी पड़ेगी।

किन्तु मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे मेरे दिये हुए तीनों मांस-मांस रुधिर और मस्तक मुझे वापस दे दे। मां का कथन सुनकर पुत्र के लिए चुप रहने के सिवा कोई चारा न था चुप हो गया।

पुनः माता ने गुरू जी से पूछा कि शास्त्र में इतनी ही बात बताई हुई है या और भी कुछ कहा है। गुरू जी ने बताया कि ठाणांग सूत्र में भगवान् ने स्वयं श्रमणों से श्रमण निर्ग्रंथ साधुओं को संबोधित करके कहा है कि आयुष्मान् श्रमणों! माता पिता, सहायता देने वाले और धर्म में स्थिर करने वाले धर्म गुरू का उपकार बहुत बड़ा है। इन से उऋण होना कठिन है। किन्तु शास्त्रों में मैंने ऐसा कहीं नहीं देखा कि पुत्र का माता पिता पर उपकार है।

मां ने पुत्र से कहा कि बता अब तू क्या चुकाना चाहता है। पुत्र का दिमाग गुरू जी की बातें सुनकर ठण्डा हो गया था अतः वह चुप रहा।

फिर गुरू जी कहने लगे कि पुत्र माता पिता के ऋण कठिनाई से उऋण हो सकता है। ठाणांग सूत्र में ही कहा है कि यदि पुत्र प्रति दिन अपने माता पिता को नहलाता है, अच्छा खाना खिलाता पिलाता है, अच्छे वस्त्र पहनाता है और अपने कंधे पर उनको उठाये फिरता है तो भी उनके ऋण से उऋण नहीं हो सकता।

आप लोग कहेंगे कि इससे अधिक एक पुत्र अपने मां

समर्थ न हो सके थे। कोई भी मुनि की रक्षा न कर सके थे। इसलिए माता पिता आदि की सेवा करना एकान्त पाप है। भौंठी छुरी को पैनी बनाना है। शास्त्र में स्पष्ट कह रखा है कि मां बाप आदि कोई कल्याण नहीं कर सकते। केवल साधु ही कल्याण कर सकते हैं। अतः सोच के निर्णय दें।

लड़के का कथन सुनकर गुरू जी समझ गये कि यह भ्रम में है। गुरू जी ने कहा भगवती सूत्र में भगवान् महावीर ने कहा है कि मनुष्य के शरीर में तीन अंग माता के होते हैं और तीन पिता के। बाकी के अंग दोनों के भिन्न होते हैं। मांस रुधिर और मस्तक मातृ अंग हैं और हाड़ मज्जा और रोम पितृ अंग है। लौकिक में भी कहावत है कि तेरी मां का माथा, तेरे बाप के हाथ। अगर माता उच्च विकार शीला होगी तो पुत्र का मस्तक भी विचारवान् होगा। पिता के हाड़ मजबूत होंगे तो पुत्र भी बलिष्ट होगा। जो जो शुक्र प्रधान अंग हैं वे पिता के हैं। वैद्यक शास्त्र में भी कहा है कि माता पिता के रजवीर्य से संतान का शरीर बनता है। आधुनिक वैज्ञानिक भी ऐसा ही मानते हैं।

यह शास्त्रीय और वैज्ञानिक बात बताकर गुरू ने उस पुत्र से पूछा कि अब तू बता कि पुत्र के अंश से माता पिता के कौन कौन अंग बनते हैं। जिससे कि पुत्र का माता पिता पर उपकार साबित हो जाय। गुरू जी की बात सुनकर माता को जोश आ गया और बीच ही में बोल उठी कि पुत्र ! तू मुझ को दूध के पैसे और पेट में रहने का भाड़ा देने वाला था

और दवा दारू करते हैं फिर भी कभी कभी पुत्र मर जाता है। डाक्टरों की दवा से कई लोग अच्छे हो जाते हैं और कई मर भी जाते हैं। कइयों पर डाक्टरी दवा असर नहीं करती और प्राकृतिक रीति से अच्छे हो जाते हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि व्यवहार में दुःखमुक्त होने के लिए उपाय किये जाते हैं। जिसका उपादान कारण पक गया होगा उसके लिए वाह्य उपाय लागू हो जायंगे।

जब तक व्यवहार में बैठे हैं तब तक व्यवहार को न भूलना चाहिये। स्त्री पुत्रादि तो नहीं छूटे हैं और माता पिता के लिए कहना कि वे दुःखमुक्त नहीं कर सकते अतः उनकी सेवा शुश्रूषा करना पाप है, नितान्त मूर्खता और अज्ञानता है। आज तो यह स्थिति देखने में आ रही है:—

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेह,
वदावदी से कहत है मोंहि जुदा करि देह।
मोहि जुदा करि देव चीज सब घर की मेरी,
केती करुं खराब अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरधर कविराय सुनो हो सज्जन मित्ता,
समय पलटतो जाय बाप सों झगरत बेटा॥

अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब इतनी सेवा करने

आप के लिए और क्या कर सकता है। जो इतने पर भी उऋण नहीं होता। उसकी सेवा में क्या कसर रह जाती है? इसके लिए मैं एक उदाहरण देता हूं।

मान लिजिये कि एक आदमी नें दूसरे आदमी को एक वगीचा इनाम में दिया है। वगीचा इनाम में पाने वाला व्यक्ति एक दिन उस वगीचे के दस वीस फल लेकर इनाम देने वाले की सेवा में उपस्थित हुआ और वे फल उसको भेंट कर दिए। मैं आपसे पूछता हूं कि क्या वगीचा इनाम में पानेवाला व्यक्ति उस वगीचे के दस वीस फल वापस देकर उस ऋण से उऋण हो सकता है, जो वगीचा मिलने से हुआ है? आपको स्वीकार करना पड़ेगा कि वह उरिण नहीं हो सकता। वह फल लाया कहां से? आखीर उस वगीचे के ही तो वे फल थे। उन फलों से वह उरिण कैसे गिना जा सकता है।

मित्रों! यही वात माता पिता के सम्बंध में समझिये। पुत्र शरीर के द्वारा माता पिता की सेवा करता है। किन्तु यह शरीर किसका दिया हुआ है? माता पिता ही का तो दिया हुआ है। माता पिता द्वारा पाये हुए शरीर से उनकी सेवा करने से पुत्र कृतज्ञ या सपूत जरूर कहलायगा किन्तु उरिण हो गया है ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता।

निश्चय की बात अलग है। व्यवहार में उपाय किये जाते हैं। जिसका उपादान अच्छा होगा उसके लिए उपाय निमित्त बन जायगा। मां वाप वच्चे की बहुत साल संभाल

और दवा दारू करते हैं फिर भी कभी कभी पुत्र मर जाता है। डाक्टरों की दवा से कई लोग अच्छे हो जाते हैं और कई मर भी जाते हैं। कइयों पर डाक्टरी दवा असर नहीं करती और प्राकृतिक रीति से अच्छे हो जाते हैं। इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि व्यवहार में दुःखमुक्त होने के लिए उपाय किये जाते हैं। जिसका उपादान कारण पक गया होगा उसके लिए वाह्य उपाय लागू हो जायंगे।

जब तक व्यवहार में बैठे हैं तब तक व्यवहार को न भूलना चाहिये। स्त्री पुत्रादि तो नहीं छूटे हैं और माता पिता के लिए कहना कि वे दुःखमुक्त नहीं कर सकते अतः उनकी सेवा शुश्रूषा करना पाप है, नितान्त मूर्खता और अज्ञानता है। आज तो यह स्थिति देखने में आ रही है:—

बेटा झगरत बाप से कर तिरिया से नेह,
बदाबदी से कहत है मोंहि जुदा करि देह।
मोंहि जुदा करि देव चीज सब घर की मेरी,
केती करुं खराब अकल बिगरेगी तेरी।
कह गिरधर कविराय सुनो हो सज्जन सित्ता,
समय पलटतो जाय बाप सों झगरत बेटा॥

अब प्रश्न यह रह जाता है कि जब इतनी सेवा करने पर भी पुत्र माता पिता से ऋण मुक्त नहीं हो सकता तब ऋण मुक्त होने का कोई मार्ग है भी या नहीं। माता पिता आदि से ऋण मुक्त होने का मार्ग है। और वह है उनको धर्म मार्ग पर

लगाना। जिस उपादान कारण से तुम पिता पुत्र के सम्बन्ध से बंधे हो और जिससे प्रेरित होकर तुम्हारा पालन पोषण किया गया है उस उपादान कारण स्वरूप धर्म का बोध देने से ऋण मुक्त हो सकते हो। माता पिता को धर्म मार्ग में स्थिर करने से उनको धर्म प्राप्ति का लाभ कराने से और उनके आत्म सुधार में मदद करने से पुत्र ऋण मुक्त हो सकता है।

सारांश यह है कि निश्चय दृष्टि से तो माता पिता पुत्र के और पुत्र माता पिता का नाथ होने में असमर्थ है। किन्तु ऐसा वही कह सकता है जो अनाथी मुनि की तरह बन चुका हो। जिसने अनाथी के समान संसार त्याग दिया है। जिसने अभी स्त्री बच्चों को तो त्यागा नहीं है केवल माता पिता की सेवा का त्याग करता है उसने धर्म का स्वरूप ही नहीं समझा है।

यह तो पुत्र का माता पिता के प्रति कर्तव्य बताया गया है। अब माता पिता का पुत्र के प्रति क्या कर्तव्य है, बताता हूं। माता पिता का कर्तव्य है कि वे पुत्र की सपूति कपूति का खयाल न करके अपना फर्ज अदा करें। पुत्र का फर्ज पुत्र के पास रहा और माता पिता का फर्ज माता पिता के पास रहा। अगर एक अपना फर्ज अदा नहीं करता तो यह कदापि उचित नहीं है कि दूसरा भी अपना फर्ज अदा करना छोड़ दे। मां बाप अपने धर्म पर दृढ़ रहें। अगर बेल अच्छी होगी तो फल भी अच्छे होंगे। माता पिता संतान का सुधार कर सकते हैं

और बिगाड़ भी। छः छः मास के बच्चों को बूट पहनाकर मां बाप प्रसन्न होते हैं, उन्हें फैशनेबल कपड़े पहनाकर शौकीन बना देते हैं। अगर माता पिता अपने पुत्र को धर्म मार्ग पर लगाने की कोशिश करते हैं तो वे अपना पूरा फर्ज अदा करते हैं।

चरित्र

लिया नियम परघर जाने का जहां रहती हो नार।
निज घर रहकर धर्म अराधे शील शुद्ध आचार रे ॥धन०॥
नृप आज्ञा से इन्द्र उत्सव को चले सभी पुर वार।
सज श्रृंगार चली नृपनारी कपिला उसके लार रे ॥धन॥

जब आत्मा जागृत होता है तब संसार के सब साधन जागृति प्रदान करने वाले हो जाते हैं। जैसे अन्न जल और वस्त्र पापी और धर्मी दोनों के उपयोग में आते हैं। किन्तु पापी का पाप बढ़ाते हैं और धर्मी का धर्म। अपना आत्मा जब धर्म में लगा रहता है तब संसार का कोई भी पदार्थ ऐसा नहीं है जो धर्म में मदद न देता हो। कपिला ने सुदर्शन को चरित्र से भ्रष्ट करना चाहा था किन्तु यही घटना सुदर्शन के लिए धर्म में और अधिक दृढ़ रहने में सहायिका बन गई। सुदर्शन ने परघर प्रवेश न करने का नियम इसी घटना के कारण ग्रहण किया है।

कई लोग कहते हैं कि मैं अमुक काम के झगड़े में नहीं पड़ना चाहता। लेकिन उनसे पूछना चाहिए कि उन्होंने अपने

घर के कामों के झंझट तो छोड़ दिये हैं न? यदि घर के सब झंझट नहीं छोड़े हैं तो केवल किसी परोपकार के कार्य की झंझट के वक्त ही कहना कि मैं तो किसी कार्य में नहीं पड़ता कैसे उचित कहा जा सकता है। स्वार्थ के कार्य तो छूटे नहीं और परमार्थ केकाम पहले ही छोड़ बैठना कहां तक उचित हो सकता है। यह निरी मूर्खता और धर्म स्वरूप समझने की अज्ञानता है। इस मूर्खतापूर्ण समझ के कारण कई लोग जैनियों पर आक्षेप करते हैं कि जैनी लोग किसी काम के नहीं हैं। कई स्त्रियां जब दूसरे बीमारों की सेवा का अवसर आता है तब कह हैं हम इस झगड़े में नहीं पड़ना चाहतीं। जब अपने बाल-बच्चों की सेवा नहीं छोड़ी है तब दूसरों की सेवा को पाप समझ कर छोड़ बैठना अनुचित है। इस प्रकार की प्रवृत्ति से आपके साथ हम भी बदनाम होते हैं। यदि सुदर्शन केवल पर घर जाने का ही नियम ले लेता और घर पर रह कर अपने आपको एकान्त धर्म कार्य में न लगा देता तब तो उसके नियम का कोई महत्त्व न होता। किन्तु उसने धर्म क्रिया में रत रह कर पर घर जाना छोड़ा था।

बुरा लड़का अपने बर्ताव से माता पिता को भी गाली दिलाता है और उनका नाम बदनाम कराता है। इसी प्रकार आप लोगों के व्यवहार से लोग हम साधु लोगों को भी गाली देते हैं। अतः ऐसी बातों का ध्यान रक्खो।

सुदर्शन आत्म साधना के मार्ग में लगा हुआ है। अपना वास्तविक हित किस बातमें है इसी खोजमें वह प्रयत्नशील है।

चम्पा नगरी का राजा दधिवाहन था। पहले के राजा लोग प्रजा में उत्साह पैदा करने के लिए अनेक प्रकार के उत्सव किया करते थे उनमें इस उत्सव को इन्द्रोत्सव कहते हैं। यह कार्तिकी पूर्णिमा पर हुआ करता था। इसका दूसरा नाम कौमुदी उत्सव भी है। दधिवाहन राजा ने भी उत्सव करने की तय्यारी कराई और नगर में घोषणा करवा दी कि कल इन्द्रोत्सव मनाया जायगा। इस लिए कोई भी व्यक्ति नगर के भीतर न रहे। सब कोई नगर से बाहर जाकर उत्सव मनावें।

जो लोग धर्मात्मा थे और उत्सवादि कार्य से उदासीन रहते थे वे भी राजाज्ञा का पालन करने के लिए नगर के बाहर चले गये। और जिन्हें मनोविनोद और मौजमजा करने का हौंस था वे तो खुशी खुशी नगर के बाहर जा कर आनन्द मनाने लगे। कई लोग राजा के साथ साथ बाहर निकले और कई अपने २ दोस्तों के साथ। कई शुद्ध मनोरंजन की भावना से चले और कई बुरी भावना लेकर भी चले। यह स्वाभाविक है कि विविध रुचि के लोग होते हैं। सब समान नहीं होते।

यहां राजकोट में भी लोग मेले में जाया करते हैं। वे किस किस भावना को लेकर जाते हैं यह तो वे स्वयं ही जाने। किन्तु इतना मैंने सुना है कि मेले में जुआ बहुत खेला जाता है। पुरुष लोग बहुत दांव लगाया करते हैं। और यह जान-कर तो दिल को बड़ी चोट पहुंची कि स्त्रियां भी जुए में पैसे लगाती हैं। जुए को बुरा और पाप प्रद मानने की भावना ही

कम होती जा रही है। लोग सोचते हैं कि एक रुपये के दस रुपये मिल गये। किन्तु एक बार दस मिल जाते हैं, वे दस कई दस को अपने साथ लेकर चले जाते हैं। तथा जिसको रुपये मिल जाते हैं वह तो राजी हो जाता है और जिसके रुपये चले जाते हैं उस पर क्या बीतती है सो विचार करो। किसी की आत्मा को दुःखी बनाकर आया हुआ धन सुख कैसे पहुंचा सकता है। जुआड़ी अपना भला सोचता है, दूसरे का नहीं। यह बहुत बुरा व्यसन है। इसे जितना जल्दी त्यागा जायगा उतना ही भला है।

दधिवाहन राजा की आज्ञासुनकर सुदर्शन ने विचार किया कि इन तीन दिनों में मनोविनोद न करके आत्मविनोद करना चाहिए मगर राजाज्ञा का खयाल करना भी जरूरी है। अतः राजा के पास जाकर उत्सव के दिनों में विशेष धर्म जागरणा करने की इजाजत ले लूं। यह सोचकर वह राजा की सेवा में उपस्थित हुआ।

सुदर्शन को आया हुआ देखकर राजा ने उचित सत्कार किया और पूछा कि सेठजी! आपको यह तो ज्ञात हो ही गया होगा कि कल से तीन दिन तक कौमुदी उत्सव मनाने के लिए नगर से बाहर रहना है। इस उत्सव का प्रबंध आपको जैसा उचित जँचे करिये। अपना धन स्वयं ही न भोगना चाहिए किन्तु दूसरों के उपयोग में भी आना चाहिए। यही सोचकर उत्सव का आयोजन किया गया है।

राजा का कथन सुनकर सेठ जरा उदासीन हो गया।

सेठ के चेहरे के भाव ताड़कर राजा ने पूछा कि उदासीन क्यों हो गये? राजन्! मेरी इच्छा ऐसी है कि मैं इन तीन दिनों में विशेष आत्म साधन करूं। मेरी पत्नी और पुत्र आपकी आज्ञानुसार उत्सव में शामिल होंगे। केवल मैं क्षमा चाहता हूं कि मुझे इस आज्ञा से मुक्त कर दिजिये।

सेठ का कथन सुनकर राजा बहुत प्रसन्न होकर कहने लगा कि सेठजी! तुम धन्य हो! हम लोग तुम्हारी चरणरज के बराबर भी नहीं हैं। तुम्हारे जैसे धर्मात्मा व्यक्ति ही आत्म कल्याण का मार्ग अपना सकते हैं। हम लोग उत्सवादि की प्रवृति अपना सकते हैं किन्तु धर्मकार्य में हमारा मन नहीं लगता। तुम्हें कोटि कोटि धन्यवाद है जो मन को मारकर ईश्वर की शरण में लगा रहे हो। अगर तुम्हारी इच्छा धर्म-कार्य करने की है तो बड़ी खुशी से करो। पूछने की कोई आवश्यकता न थी। बिना पूछे राजाज्ञा का भंग होता अतः मैंने पूछना जरूरी समझा, सुदर्शन ने उत्तर दिया।

घर आकर सुदर्शन ने अपनी स्त्री पुत्रों से कहा कि तुम सब राजाज्ञानुसार उत्सव में जाना। मैं धर्म साधना में लगता हूं। सुदर्शन तीन दिन का तेला करके बैठ गया। स्त्री ने अपने घर के पोजिशन के अनुसार बच्चों को वस्त्र और आभूषण पहनाये तथा खुद ने भी पहने। रथ में सवार होकर नगर से बाहर निकली।

उधर राजा की रानी अभया भी उत्सव में भाग लेने

के लिए नगर के बाहर आई है। आगे क्या होता है सो यथा-वसर बताया जायगा।

१२-८-३६
राजकोट

आदर्श भ्रातृ-प्रेम

श्री आदीश्वर स्वामी हो, प्रणमूं सिर नामी तुम भणी,
प्रभु अन्तर्यामी आप। मो पर म्हेर करिजे हो;
मेटीजे चिन्ता मनतणी, मारा काटो पुराकृत पाप ॥श्री०॥

प्रार्थना—

यह प्रथम तीर्थङ्कर भगवान् ऋषभदेव स्वामी की प्रार्थना है। भगवान् ऋषभदेव के ध्यान और स्तुति का हिन्दु समाज में बहुत बड़ा स्थान है। जैनधर्मावलम्बियों ने तो उनका महत्त्व वर्णन किया ही है किन्तु इतर धर्म वालों ने भी उन सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा है। भगवान् ऋषभदेव ऐसे अवतार हैं जिनके झण्डे के नीचे हिन्दुमात्र खड़े हो सकते हैं।

संसार में देखा जाता है कि जिसको हैं उसका महत्त्व भी बहुत है। चुनाव में जो

स्पष्ट हो जाता है कि हमें भी अपनी तृष्णा घटानी चाहिए। जब हमारा आदर्श ही तृष्णा रहित है तो हम तृष्णा बढ़ाने की कल्पना तक कैसे कर सकते हैं।

वेद व्यासजी अपना और पराया दोनों का कल्याण करने वाले ऋषभदेव को नमस्कार करते हैं। जो अपना कल्याण कर लेता है वह तो अच्छा ही है। किन्तु जो अपने कल्याण के साथ साथ जगत् जीवों को संसार सागर से पार लगाने की कोशिश करते हैं वे ही महान् उपकारी पुरुष हैं। अठारह कोडाकोडी सागर वर्षों से भोग भूमि हो जाने के कारण यह पृथ्वी धर्म शून्य हो रही थी—धर्म का विरह पड़ा हुआ था उसको मिटा कर उन्होंने राज्य व्यवस्था के उपरांत धर्म व्यवस्था की थी।

घोड़े की पूंछ लम्बी होती है मगर दूसरों के लिए वह क्या काम की ? अधिक से अधिक वह अपनी मक्खियां उड़ा सकती है। गाय की पूंछ अपनी मक्खियां उड़ाने के सिवाय दूसरों की भी उड़ा सकती है। गाय की पूंछ के चंवर बनते हैं जिससे मनुष्यों की मक्खियां भी उड़ाई जा सकती हैं। विशेषता पराये काम आने में है। भगवान् ऋषभदेव ने अपना भी कल्याण किया और दूसरों का भी इसी लिए उनको वंदन नमस्कार किया गया है।

यदि सूर्य दूसरों को प्रकाश न दे और स्वयं ही प्रकाशित होता रहे तो कौन उसे सूर्य कहेगा। पानी दूसरों की

जाता है उसे सब मानते हैं। भगवान् ऋषभदेव को जैनों और हिन्दुओं ने एकमत होकर परमात्मा स्वीकार किया है।

अठारह कोडाकोडी सागर से यह भारतभूमि धर्म से रहित थी। भगवान् ऋषभदेव ने अवतार ग्रहण करके अपनी अवस्था के बीस भाग कुंवर पद में तिरसठ भाग जन कल्याण में तथा एक भाग-केवल ज्ञान केवल दर्शन प्राप्त करने के बाद-मोक्षमार्ग दिखाने में व्यतीत किया था। इस भारत क्षेत्र में पुनः धर्म मार्ग की संस्थापना करने के कारण भगवान् हम से असंख्यकाल पहले होने पर भी हमारे निकट हों ऐसा मालूम देता है।

वेद व्यासजी ने भागवत पुराण में ऋषभदेव की प्रार्थना करते हुए कहा है—

> नित्यानुभूति निजलाभ निवृत्त तृष्णः,
> श्रेयस्यतद्रचनया चिरसुप्तबुद्धेः।
> लोकस्य यः करुणाभयाऽऽत्मलोक—
> माख्यन्नमो भगवते ऋषभाय तस्मै॥

उस भगवान् ऋषभदेव को नमस्कार है जिसने स्वयं तृष्णा रूपी समुद्र पार करके चिरकाल से मोहनिद्रा में सुषुप्त मानव समाज को जागृत किया और धर्म मार्ग में लगाया है। आत्मस्वरूप का बोध करके स्वयं ही जिन्होंने तृष्णा और आशा की डोर को काट दिया था और फिर जनता को उपदेश दिया था। तृष्णा रहित भगवान् को नमस्कार करने से यह तो

स्पष्ट हो जाता है कि हमें भी अपनी तृष्णा घटानी चाहिए। जब हमारा आदर्श ही तृष्णा रहित है तो हम तृष्णा बढ़ाने की कल्पना तक कैसे कर सकते हैं।

वेद व्यासजी अपना और पराया दोनों का कल्याण करने वाले ऋषभदेव को नमस्कार करते हैं। जो अपना कल्याण कर लेता है वह तो अच्छा ही है। किन्तु जो अपने कल्याण के साथ साथ जगत् जीवों को संसार सागर से पार लगाने की कोशिश करते हैं वे ही महान् उपकारी पुरुष हैं। अठारह कोडाकोडी सागर वर्षों से भोग भूमि हो जाने के कारण यह पृथ्वी धर्म शून्य हो रही थी—धर्म का विरह पड़ा हुआ था उसको मिटा कर उन्होंने राज्य व्यवस्था के उपरांत धर्म व्यवस्था की थी।

घोड़े की पूंछ लम्बी होती है मगर दूसरों के लिए वह क्या काम की ? अधिक से अधिक वह अपनी मक्खियां उड़ा सकती है। गाय की पूंछ अपनी मक्खियां उड़ाने के सिवाय दूसरों की भी उड़ा सकती है। गाय की पूंछ के चंवर बनते हैं जिससे मनुष्यों की मक्खियां भी उड़ाई जा सकती हैं। विशेषता पराये काम आने में है। भगवान् ऋषभदेव ने अपना भी कल्याण किया और दूसरों का भी इसी लिए उनको वंदन नमस्कार किया गया है।

यदि सूर्य दूसरों को प्रकाश न दे और स्वयं ही प्रकाशित होता रहे तो कौन उसे सूर्य कहेगा। पानी दूसरों की

प्यास न बुझाये और रोटी दूसरों की भूख न मिटाये तो आप उसे पानी और रोटी न कहेंगे। इसी प्रकार जो दूसरों की भलाई के कार्य नहीं करते केवल उदरम्भरी (पेट भरे) बने रहते हैं उनकी गणना महापुरुषों में नहीं हो सकती। जो पराये काम न आता वह इन्सान ही क्या है। महापुरुष वही कहे जाते हैं जो परोपकार में अपने को खपा देते हैं।

कहने का सारांश यह है कि ऋषभदेव के लिए हमारी भावना ऊँची होनी चाहिए। केवल कहने मात्र के लिए भावना उच्च न होनी चाहिए किन्तु कर्त्तव्यरूप में भावना उच्च होनी चाहिए। भगवान् ऋषभदेव या अन्य जितने भी महापुरुष या अवतारी पुरुष हुए हैं वे इसी भूमि पर हुए हैं देवलोक में किसी अवतार ने जन्म लेकर जगदुद्धार नहीं किया है। अतः इसी पृथ्वी को सुन्दर बनाने की कोशिश करनी चाहिए। पृथ्वी को सुन्दर न बना सको तो अपने पड़ोसियों, ग्राम-वासियों और आस पास वालों को तो कम से कम सदाचारी और धर्मनिष्ठ बनाने की कोशिश करो। जो स्वयं सुधरा हुआ होगा वही दूसरों का सुधार कर सकता है और उसीका असर भी हो सकता है।

पृथ्वी पर रहकर ही स्वपर का कल्याण किया जा सकता है। देव लोक में स्वतः ही सुख है। अतः वहां क्या प्रयत्न किया जाय। इस पृथ्वी पर अनेक लोग अनेक प्रकार के अभाव और अभियोगों से दुःखी हैं उनका दुख दूर करने का प्रयत्न होना चाहिये। करुणा करने का स्थान पृथ्वी ही है।

ऐसा न हो कि मेरा व्याख्यान सुनते हैं उतनी देर तक तो उत्साह और जोश बना रहे और बाहर गये कि सब खत्म। जैसे मेले के प्रारंभ में तो लोगों को उत्साह था और मेला पूरा हुआ कि उत्साह भी चला गया। ऐसा न हो। धर्म के कार्य में स्थायी उत्साह होना चाहिये। जो कभी मिटे ही नहीं।

कल से पर्यूषण पर्व का प्रारम्भ होता है। आप लोगों को इस पवित्र त्योहार मनाने में बहुत उत्साह रखना चाहिए यह पर्व लौकिक पर्वों की तरह मौज मजा करने के लिए नहीं है किन्तु आत्मा साधना, धर्म जागरण और आत्मशोधन के के लिए है। इस पर्व में पाप कार्यों से बचकर धर्मकरणी करने में जुट जाओ।

शास्त्र—

अब अनाथी मुनि की बात कहता हूं। राजा श्रेणिक अनाथी मुनि की अनाथता की बात सुनकर बहुत आश्चर्यान्वित हो रहा है। मुनि ने माता पिता के तरफ की अनाथता तो बतादी है अब भाई के तरफ की अनाथता भी बताते हैं।

भायरो मे महाराय सगा जिट्ठ कणिट्ठगा।
नय दुक्खा विमोयन्ति एसा मज्झ अणाहया ॥२६॥

राजन्! मेरे छोटे और बड़े भाई भी थे। किन्तु वे भी मेरी वेदना मिटाने में असमर्थ रहे। मेरे सहोदर भाई थे। वे नाम के भाई न थे किन्तु काम के भाई थे। जामणजाये भाई

थे। मेरे लिए सब कुछ करने को उद्यत थे।

दुनिया में भाई को अच्छा भी माना जाता है और बुरा भी। अच्छा तो इस लिए माना जाता है कि वक्त पर वह काम आता है। कितना भी आपस में वैर विरोध हो किन्तु वक्त पड़ने पर रक्त का सम्बन्ध जागृत हो जाता है। जैसे महाराना प्रताप को लड़ाई से भागते हुए देखकर अभिमानी शक्तसिंह का दिल मोम बनकर पिघल गया था और उनके चरणों में गिर पड़ा था। और बुरा इसलिए माना जाता है कि भाई हिस्सेदार बन कर जन्म लेता है। हर बात व वस्तु में अपना अधिकार दर्शाता है। अधिकार और संपत्ति को लेकर आपस में सदा खटराश चलती रहती है। यदि उनकी स्त्रियां समझदार न हुई तो वे आग में घी का काम करती रहती हैं।

जब एक बच्चा दूध पीता होता है तब दूसरा गर्भ में आते ही अपने भाई का दूध छीन लेता है। जब जन्म ग्रहण करता है तब माता पिता का प्रेम भी छीन लेता है। पहले एक ही लड़का होता है सो सारा प्रेम उसी एक पर केन्द्रित होता है। किन्तु जब दूसरा भाई पैदा हो जाता है तब प्रेम बंट जाता है। थोड़ा और बड़ा होने पर खाने पीने, पहनने ओढ़ने, खेल खिलौने आदि हर वस्तु में हिस्सा लेने लगता है। जब युवा हो जाता है तब पिता की सारी जायदाद में आधा हिस्सा बटा लेता है। इस लिए भाई से बढ़कर कोई भी शत्रु नहीं है।

किन्तु राजन् ! मेरे भाई ऐसे कमीने खयाल के न थे।

वे उदार दिल के व्यक्ति थे। मेरे भाइयों के लिए कहा जा सकता है कि वे रामलक्ष्मण और महावीर नंदी वर्धन की जोड़ी जैसे थे। वे अपने को संकट में डाल कर मुझे सुखी बनाने के लिए सदा तत्पर रहते थे।

जब रामचन्द्र को जंगल में जाने की नौबत आई तो तो उसमें कुछ कारण था कैकेयी के वरदान की पूर्ति के लिए उनको वनवास जाना पड़ा था। किन्तु लक्ष्मण को वनवास जाने का क्या कारण था? जब उन्होंने राम के वनगमन की बात सुनी तो उनकी आंखे क्रोध से लाल हो गईं, भुजायें फड़कने लगीं और पैरों से पृथ्वी को हिलाने लगे। उनका क्रोध देखकर लोग भय से कांपने लगे।

किन्तु जब रामचन्द्र ने कहा कि भाई! तुम मेरा गौरव बढ़ाना चाहते हो या घटाना? तब लक्ष्मण शान्त हो गये। विनीत स्वर में कहने लगे कि भाई मैं आपकी आज्ञाओं का पालन करने के लिए सदा तत्पर हूं। किन्तु कृपा करके आपका साथ मुझ से न छुड़ाना। यह बात मुझ से सहन न होगी। मैं और कुछ नहीं चाहता। केवल आपके साथ रह कर आपकी सेवा करना चाहता हूं।

रामचन्द्र ने लक्ष्मण की बात सुनकर उत्तर दिया कि यदि तुम मेरे साथ जंगल में आ जाओगे तो पिता माता को कितना कष्ट होगा। तुम मेरे साथ चलने का आग्रह क्यों करते हो। क्या मुझे दुःख सहन करने में कायर समझते हो?

तुम यहीं पर रह कर भाई भरत के राजकाज में सहायता करना।

यदि कोई आजकल का भाई होता तो अपने बड़े भाई के ऐसे शब्द सुनकर बड़ा राजी होता। अच्छा हुआ जो जंगल जाने का पिंड छूटा और कष्ट से बच गया। कहने को भी हो गया कि मैं जंगल में साथ आना चाहता हूं और कष्टों से भी बच गया। किन्तु लक्ष्मण ऐसा भाई न था जो मन में कुछ और रखता हो और ऊपर से कुछ अन्य प्रकार का व्यवहार करता हो। उसका प्रति सच्चा प्रेम था।

लक्ष्मण ने कहा भाई ! पिताजी की सेवा करने वाले यहां बहुत हैं। आप वन जावें और मैं यहां रहूं यह कैसे उचित हो सकता है।

रामचन्द्र समझ गये कि यह मानने वाला नहीं है। यदि मैं आग्रह पूर्वक इसे यहां छोड़ जाऊंगा तो न मालूम यह अपने प्राण भी रखे या न रखे। रामचन्द्र ने कहा कि लक्ष्मण तुम माता के पास जाकर इजाजत ले लो फिर मेरे साथ चलना। लक्ष्मण विचार में पड़ गये कि कहीं ऐसा न हो कि माता के पास जाऊं और वह पुत्र स्नेह के कारण वनगमन की आज्ञा न दे। हे भगवन् ! मेरी माता को ऐसी सद्बुद्धि दीजिये कि वह मुझे राम के साथ वन जाने की इजाजत दे दे।

लक्ष्मण अपनी माता सुमित्रा के पास गये। सुमित्रा को पुत्र-स्नेह हुआ फिर भी उसने क्या उत्तर दिया था वह जैन

रामायण में सुस्पष्ट अंकित है ।

वत्स सुवत्स बुद्धि ताहरी, भलो मतो तुझ मांय ।
तात राम करि लेखनो, कहे सुमित्रा माय ॥

सुमित्रा कहती है कि पुत्र लक्ष्मण ! तुम्हारी बुद्धि अच्छी है और तुम्हारा मन भी भला है जो राम और सीता के साथ जाने की तेरी इच्छा हुई । तू रामचंद्र को पिता के समान और सीता को माता के समान मानकर इनकी सेवा करना । इनको किसी प्रकार का कष्ट मत होने देना । मैं अपने को धन्य समझूंगी जब यह सुनूंगी कि लक्ष्मण ने अपने भाई भोजाई की एक चित्त से सेवा की है । पुत्र ! तेरे सद्भाग्य से ही राम वन को जा रहे हैं । महलों में रहकर माल मलिदा उड़ाने में भाग्य का उदय नहीं है किन्तु वन में जाकर अपने बड़े भाई राम की सेवा करने में भाग्योदय है ।

लक्ष्मण जैसा भाई और सुमित्रा जैसी माता का मिलना महान् पुण्य कर्मफल का उदय कहा जा सकता है । सुमित्रा के ये वचन सुनकर लक्ष्मण को कितना हर्ष हुआ होगा कि राम के साथ वनगमन करने में देरी मत करो । मानो भूखे को रोटी और प्यासे को पानी मिल गया हो । भक्ति-मार्ग में स्वार्थ और विषय भावना नहीं होती । लक्ष्मण ने वन में रामचंद्र और सीता की किस लगन से सेवा की थी यह सबको सुविदित है ।

अनाथी मुनि कहते हैं कि राजन् ! मेरे भाई लक्ष्मण जैसे थे । उन्हें अपने शरीर की इतनी चिन्ता न रहती थी

जितनी मेरे शरीर की। वे घर की सारी संपत्ति लुटाने के लिए भी तय्यार थे यदि कोई उनके भाई की वेदना मिटा दे।

अनाथी मुनि के कथन पर आप लोग भी गौर करिये। क्या आप अपने भाई की वेदना मिटा सकते हैं या आपका भाई आपकी वेदना मिटा सकता है? यदि नहीं, तो अभिमान करना व्यर्थ है। राजा श्रेणिक जो अखूट सम्पत्ति का स्वामी था, मुनि के जीवन की घटना सुनकर अपने को अनाथ मानने लग गया था तो आप भी अपने को अनाथ क्यों नहीं मानते! अपने नाथ आप स्वयं ही बनो। यदि आप अपने नाथ बन जाओगे तो सारा जगत आपका दास बन जायगा। अनाथी मुनि अपनी आत्मा के नाथ बने तो श्रेणिक भी उनके चरणों में झुक पड़ा था।

श्रेणिक राजा किसी समर्थ और बलवान् की तलवार से भी किसी को अपना मस्तक झुकाने वाला न था किन्तु अपनी आत्मा पर विजय करने वाले मुनि के चरणों में वह बड़ी खुशी और हर्ष से स्वयं ही झुक पड़ा। यह पर पदार्थ छोड़कर स्व स्वरूप में रमण करने की कला की विजय है।

आप लोग भी अपने को अनाथ मानकर सच्चे नाथ बनने की कोशिश करो। मैं यह नहीं कहता कि आप लोग आज ही सब धन दौलत और कुटुम्ब को त्यागकर साधु बन जावें। किन्तु आपके हृदय में यह लगन होनी चाहिए कि हम अनाथ हैं और हमें नाथ बनना है। ऐसी भावना रखने से कभी नाथ भी बन जायेंगे।

संसार में देखा जाता है कि जो निर्बल होता है उसी पर सब कोई सवार होने को तय्यार रहते हैं। दुर्बल को दो आषाढ़। माता के सामने बलिदान करने के लिए बकरे को चुना जाता है। सिंह को कोई नहीं चुनता। बेचारा बकरा बलिदान के वक्त म्यां म्यां करता है। किन्तु सिंह की दहाड़ के सामने बलिदान करने वाले खड़े तक नहीं रहते। दूर भाग जाते हैं। आजकल स्वराज्य की मांग की जाती है। किन्तु निर्बलों की आवाज को कौन सुनता है अतः मुनि का कथन ध्यान में लेकर आत्मबल बढ़ाओ।

मैं देखता हूं कि आप लोग प्रतिदिन मेरी बातें केवल सुनते ही रहते हैं आचरण में लाते हुए नहीं देखता हूं। आज इतने दिन व्याख्यान सुनते सुनते हो गये किन्तु अभी तक चर्बी के वस्त्र भी नहीं छूटे हैं। कई लोग कहते हैं कि हमसे खादी के मोटे वस्त्र पहने नहीं जाते हैं। स्त्रियां भी इतने महीन वस्त्र पहिनती हैं कि लाज और धर्म जावे तो भले जायं किन्तु उनकी फैशन और अमीरी न जानी चाहिए। मित्रो! ऐसी निर्बलता का त्याग करके अनाथी मुनि जैसे सबल बनो।

चरित्रः—

अब मैं चरित्र के द्वारा यह बताना चाहता हूं कि आत्मा को बलवान् कैसे बनाना चाहिए। चम्पा नगरी के सब नरनारी मनोविनोद और आनंद विहार करने के लिए नगर से बाहर गये हुए हैं। एक सुदर्शन है जो तीन दिन का उपवास करके

अपनी आत्मा का निरीक्षण कर रहे हैं।

अनेक लोग ऐसे होते हैं जो कल्याणकारी दिनों को भी अकल्याण कर बना लेते हैं। विस्तर पर विमार अवस्था में पड़े हुए भी कहते रहते हैं–हे भगवान्! एक बार चार दिनों के लिए चंगा हो जाता तो अमुक खेल या मेला देख आता। थोड़ा आयु और लम्बा जाय तो पौत्र का मुख देख लूं या अमुक काम पूरा कर लूं। मरते जीते अमुक कार्य तो पूरा कर डालूं। जन्माष्टमी और दीपमालिका जैसे पवित्र त्यौहारों को जुआ खेलने के लिए मानते हैं। इस प्रकार अच्छे दिनों का उपयोग बुरे काम करने में करते हैं।

चम्पा में भी यही हुआ। लोगों में कौमुदी उत्सव मनाने का बड़ा उत्साह है। बड़ी चहल पहल और रौनक है। राजा में भी बड़ा उत्साह है और सुदर्शन सेठ में भी। किंतु दोनों के उत्साह में बड़ा फर्क है। दोनों उत्साहों की आपस में लड़ाई होती है।

नृप आदेशे इन्द्र महोत्सवे, चले सभी पुर बार।
सज शृङ्गार चली नृप नारी, कपिला उनके लार रे ॥धन०॥
पांच पुत्र संग मनोरमा भी, चली बैठ रथ मांय।
कपिला निरखी मन अति हरखी रानी को बतलाय रे ॥धन०॥
सती सावित्री लक्ष्मी गौरी से अधिकी इन काय।
जिस घर नारी यह सुखकारी, शोभा वरणी न जाय रे ॥धन०॥

भगवान् महावीर ने कहा है कि—

चउविहे समण संघे पण्णत्ते तं जहा समणाए समणिए सावयाए सावियाए य।

चार प्रकार के श्रमण संघ में साधु साध्वियों के सिवाय श्रावक-श्राविकाओं को भी स्थान दिया गया है। संघ को तीर्थ भी कहा गया है जो तीर्थ होता है वह कैसा तारक होता है और जगत् का कल्याण कारक होता है यह बात सुदर्शन के चरित्र से देखिये। सुदर्शन श्रावकतीर्थ है। वह तीर्थस्वरूप होकर बैठा हैं। तीर्थ के जिम्मे अपने को और दूसरों को तारने की भी जिम्मेवारी है। ऐसा होते हुए भी, कोई तीर्थ का नाम धराकर जुआ खेलता फिरे, पर स्त्री ताकता फिरे और इधर उधर भटकता फिरे तो उसे क्या कहा जाय। वह तीर्थ कैसा। भगवान् ने श्रावक भी चार प्रकार के बताये हैं—

चत्तारि समणोवासगा पन्नत्ता तंजहा—अद्दाग समाणा पडाग समाणा ठाणु समाणा खरकंट समाणा।

मैं श्रावक को तीर्थ तो कहता हूं मगर तीर्थ चार प्रकार का है। कोई श्रावक कांच के समान, कोई ध्वजा के समान, कोई ठूण्ठ के समान, और कोई ज़हरी कांटे के समान होता है। कांच के समान श्रावक वह है जो भीतर बाहर एक समान हो। जो दूसरों को अपना चेहरा दिखा देता है। अपना व्यवहार ऐसा रखता है कि उसके साथ व्यवहार करने वाला भ्रम में नहीं पड़ता। कई लोग अपने को ऊपर से धार्मिक दिखाने की चेष्टा करते हैं जिससे बेचारे भोले लोग उन्हें धर्म-

आई है उसके दिल में किसी प्रकार का कोई आकर्षण नहीं है। जब कि दूसरी अपने मन में अनेक अरमान ले कर आई है। वह युवकों की तरफ मन में आकर्षण ले कर आई है।

कपिला को आई देखकर रानी ने कहा—अच्छा, आप भी तशरीफ ले आई। आपकी आज्ञा का पालन किये बिना आपके राज्य में कैसे रह सकती हूं आना ही पड़ा, कपिला ने वापस उत्तर दिया। मैं तो याद ही कर रही थी कि पुरोहितानी जी आवें तो मेले में चलें। इस प्रकार दोनों ने वार्तालाप किया। किन्तु यह वार्तालाप दिखाऊ था। भीतर में दोनों के भाव और हैं।

रानी और कपिला दोनों एक ही रथ में सवार होकर उत्सव देखने के लिए निकली। मनोरमा भी अपने पुत्रों के साथ खुद के रथ में बैठकर पीछे पीछे चलने लगी। रानी और कपिला इधर उधर दृष्टिपात करती हुई चल रही हैं। किन्तु मनोरमा नीची नजर किये हुए मानो पति या परमेश्वर का ध्यान करती हुई चल रही थी।

कपिला ने मनोरमा को देखा। देखकर बारंबार उसी की तरफ ताकती जाती थी। रानी ने पूछा कि कपिला बारबार उधर क्या देखती हो! कपिला ने उत्तर दिया कि मैं इस स्त्री को देख रही हूं यह कैसी स्त्री है, इसे लक्ष्मी कहूं या सरस्वती? विधाता ने सारा रूप सौन्दर्य इसी में भर दिया है। और इसके ये पांचों पुत्र भी कितने सुन्दर हैं, देखते रहने की ही

इच्छा होती है। रानी ने कहा—क्या तू नहीं जानती कि यह नगर सेठ की सेठानी है और ये पांचों लड़के इन्हीं के पुत्र हैं। क्या तुम इनको नहीं जानती? यह सुनकर कपिला ठहाका मारकर जोर से हँसने लगी। कपिला को हंसते देखकर चौसठ कला में कुशल रानी समझ गई कि जरूर इस के पेट में कोई बात छिपी है। इतने में कपिलाने कहना शुरू कर दिया कि यह खूब सती बनी है। लोग आपकी और मेरी निन्दा किया करते हैं मगर इसकी पोल कोई नहीं जानता।

यह मनोरमा भी आप और मेरी तरह ही है। मुझे आश्चर्य तो इस बात का है कि कहीं नपुंसकों के भी पुत्र हुआ करते हैं। मैं नगरसेठ को चोटी से एड़ी तक खूब जानती हूं। न मालूम किसके संग से ये पुत्र जने हैं। देखो तो कितने रुआब से सती बनी बैठी है।

रानी ने पूछा—कपिला इतना क्यों हंसती है। आखिर हंसने का कोई कारण होना चाहिए। कपिला ने कहा--यों ही हंस रही हूं। रानी ने जिद्द कर ली कि हंसने का कारण बताना पड़ेगा। मुझसे भी बात छिपाती है। क्या तुझे मेरी पर्वाह नहीं है? मैं हंसी का कारण सुने बिना न रहूंगी।

कपिला ने सोचा कि मैंने सुदर्शन के सामने यह भेद न प्रकट करने की सौगन्ध ली है। किन्तु मेरा यह सौगन्ध वक्त पर काम निकालने के लिए था। मैं मतलब की यार हूं। सौगन्ध या त्याग की नहीं।

कपिला ने धीरे से इशारे से बताया कि यह सेठानी सुन्दरी है और अपने को सती बताती है। किन्तु यह दुराचारिणी है। यही सोचकर मुझे हंसी आ गई थी। रानी ने कहा--कपिले! तू भूलती है। मैंने सेठानी को नजदीक से देखा है। इसकी आंखों में ब्रह्मचर्य का तेज है। इसमें कोई दोष मालूम नहीं देता। कपिला ने कहा--रानीजी मैं नहीं भूलती आप भूलती हैं। इसका पति नपुंसक है और ये पांचों पुत्र किसी परपुरुष के हैं।

रानी ने कहा--कपिला तू धोखा खा गई है। यह सेठानी सती है और इसका पति सुदर्शन भी पुरुषत्व से हीन नहीं है। कपिला ने कहा--इसके पति सुदर्शन ने स्वयं मुझसे कहा था कि मैं नपुंसक हूं। रानी समझ गई कि इसने कभी सेठ को फांसने का प्रयत्न किया होगा और सेठ ने अपने शील की रक्षा के खातिर ऐसा कह दिया होगा।

रानी ने कहा--कपिला तू अपने को बहुत चतुर समझती है मगर वह बनिया तुझसे भी अधिक चतुर निकला जो तुझे बहका कर तेरे जाल से निकल गया। वह नपुंसक नहीं है। तुझे धोखा हुआ है। कपिला ने कहा--यदि ऐसी बात है तब तो सेठ बड़ा चतुर है। जो मेरे चक्र से बच गया वह किसी के चक्र में नहीं फँस सकता। रानी ने कहा--ऐसी बात नहीं है। सारी होंशियारी का ठेका तुम्हीं ने नहीं ले रखा है। दुनिया बहुत बड़ी है और उसमें कई हस्तियां मौजूद हैं।

देख, मैं कोशिश करती हूं। कैसे यह सेठ अपने जाल से बच सकता है।

इस प्रकार दोनों सखियां आपस में बातचीत कर रही हैं। आगे की बात यथावसर कही जायगी।

१३-८-३६
राजकोट

मण्डल से प्राप्य पुस्तकें

१ पुष्प अहिंसा व्रत ।)
२ ,, सकडाल पुत्र ।-)
३ ,, -धर्म व्याख्या ।=)
४ ,, -सत्य व्रत ।)
५ ,, -हरिश्चन्द्र तारा १।)
६ ,, -अस्तेय व्रत ≡)
७ ,, -सुबाहुकुमार
८ ,, -ब्रह्मचर्य व्रत -)
९ ,, -सनाथ अनाथ निर्णय ।।।)
१० ,, -रुक्खमणी विवाह ।।=)
११ ,, -सती राजीमती ।।।-)
१२ ,, -सती चन्दनबाला १।)
१३ ,, -परिग्रह परिमाणव्रत ।)
१४ ,, -सुदर्शन सेठ चरित्र ।।।)
१५ ,, -सेठ धन्नाजी ।।।)
१६ पुष्प-गुण व्रत ।=)
१७ ,, -मदनरेखा ।।।)
१८ ,, -चार शिक्षा व्रत ।)
१९ ,, -भगवती प्र. भा. १)
२० ,, - ,, द्वि. भा. १।)
२१ ,, - ,, तृ. ,, १।।)
२२ ,, -सम्यक्त्व स्वरूप ।)
२३ ,, -भगवती ४ भाग १।)
२४ ,, - ,, ५ ,, १।)
२५ ,, - ,, ६ ,, (छप रही है।)
२६ ,, -अनुकम्पा विचार (भावार्थ सहित) १ भाग १।।)
जीवन संस्मरण २, छप रही है
मुखवस्त्रिका सिद्धि ।)
कर्म सिद्धि =)
स्वर्गीय पूज्य श्रीश्रीलालजी म. का जीवन चरित्र १)
सृष्टिकर्तव्य मिमांसा -)
तीर्थंकर चरित्र १ भाग ।=)

,, ,, २ भाग	॥-)	तेरहवीं किरण	२)
नूतन चौवीस	=॥)	चवदहवीं ,,	१।)
अनुकम्पा विचार (ढालें)	।)	पंद्रहवीं ,,	॥।)
जैन दर्शन में तेरापंथ छप रही है		सोलहवीं ,,	१)
प्रथम किरण	१।)	सत्रहवीं ,,	१।)
चौथी ,,	१॥)	अठारहवीं ,,	,,
छटी ,,	॥।)	उन्नीसवीं ,,	२)
सातवीं ,,	२)	बीसवीं ,,	१॥।)
नवमीं ,,	१॥)	इक्कसवीं ,,	१॥)
दशमीं ,,	१।)	बाइसवीं ,,	२)
ग्यारवीं ,,	॥।)	तेइसवीं ,,	१।)
बाहरवीं ,,	,,		

मिलने का पता—

श्री जैन हितेच्छु श्रावक मंडल,

रतलाम (मध्य-भारत)